TEXT PROBLEM WITHIN THE BOOK ONLY

UNIVERSAL
LIBRARY

OU_182429

UNIVERSAL
LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Osmania University Library

Call No. H82 R223 Accession No. GH 4206

Author रस्तोगी विनोद

Title भीष्म पितामह

This book should be returned on or before th
marked below.

भीष्म पितामह

[चार अंकों में पूर्णकालिक नाटक]

[महात्मा भीष्म के जीवन-चरित्र पर प्रकाश डालने वाला
प्रेरक, शिक्षाप्रद, तरुणोपयोगी, रंगमंचीय नाटक]

भारत

नाटककार

विनोद रस्तोगी

नाट्य-निर्देशक

आकाशवाणी इलाहाबाद

रंजन प्रकाशन

पुस्तक प्रकाशक, आगरा–३

प्रथम संस्करण, १९६९

प्रकाशक : रंजन प्रकाशन, आगरा-३
मूल्य : तीन रुपये
मुद्रक : दी एजुकेशनल प्रेस, सिटी स्टेशन रोड, आगरा -३

दो शब्द

पितामह भीष्म महाभारत के ही नायक नहीं थे, वरन् उनका जीवन-चरित्र आज भी सम्पूर्ण भारतीय समाज को धर्माचरण एवं न्याय-नीति की प्रेरणा देता है। उनकी पितृ-भक्ति, वीरता, धीरता, दृढ़-प्रतिज्ञता, संकल्प-शक्ति, शान्ति-प्रियता अनुकरणीय है। अपने सद्गुणों के कारण ही वे बाल-ब्रह्मचारी होकर भी पूरे समाज के पितामह बन गये थे।

अपने प्रस्तुत नाटक मे मैने यही चेष्टा की है कि नायक भीष्म के समस्त गुण उजागर हो सके। प्रमुख बल उनकी न्याय-नीति एवं शान्ति-प्रियता पर दिया है। क्षत्रिय होकर भी वे युद्ध-लोलुप नही थे। बन्धु-विग्रह को वे देश-नाशक मानते थे। उनकी दृष्टि मे आदर्श समाज वही था, जिसमें प्राणी मात्र शान्ति, सुख और सद्भाव मे रह सके। युद्ध की विभीषिका से वे समाज को बचाना चाहते थे।

महाभारत का अत मानव-जाति की आँखें खोलने वाला है। युद्ध का अत विनाश मे ही होता है। आधुनिक युग मे भी मानव-जाति दो विश्व-युद्ध देख चुकी है और वह तीसरे महायुद्ध के कगार पर खडी है। वातावरण मे भय, आशका, त्रास, सशय, सन्देह आदि व्याप्त है। शीत-युद्ध के विष का प्रभाव निरन्तर बढ रहा है। मानव-जाति, वर्ग, धर्म और राष्ट्र की इकाइयों मे विभक्त है। भाई, भाई के रक्त का प्यासा है। ऐसी स्थिति मे महात्मा भीष्म का उपदेश मानव-समाज के लिए कल्याण-कारी हो सकता है। ध्वंस के बजाय यदि हमारी शक्तियां निर्माण-कार्य मे लग जायें तो मानवता का हित और विकास हो।

नाटक की रचना इसी ध्येय से की गयी है कि भीष्म पितामह का संदेश मुखरित हो सके। नाटक मे उन्ही पात्रो को रक्खा गया है जो अनिवार्य है। पात्रो की भीड़ नाटक के मंचीकरण मे बाधक होती है।

रंगमंच से सक्रिय सम्पर्क होने के कारण मुझे मंच की सीमाओं और सम्भावनाओं का पूरा ज्ञान है। मेरा प्रयास यही रहा है कि यह नाटक मात्र पाठ्य न रहकर अभिनेय भी हो। इसी दृष्टि से दृश्यों की सँयोजना की गयी है। नाटक अत्यन्त सुगमता से मंच पर प्रस्तुत किया जा सकता है।

वैसे मेरा यह नाटक, ज्योति-पुरुष, योगीश्वर, महात्मा भीष्म के प्रति विनम्र श्रद्धाञ्जलि ही है। और क्या कहूँ ?

आकाशवाणी
इलाहाबाद

—विनोद रस्तोगी

पहला अंक

पहला दृश्य

स्थान--गंगा-तट।

समय--प्रातःकाल।

[किशोर देवव्रत अपने प्रचंड धनुष पर तीखे बाण चढ़ा कर बायें नेपथ्य की ओर छोड़ रहा है। उसके गौर वर्ण मुख-मंडल पर दैवी तेज है। उसकी जननी गंगा उसके शर-संधान को मंत्र-मुग्ध होकर देख ही है।]

गंगा--(प्रसन्न होकर) वत्स देवव्रत ! तुम्हारा अद्‌भुत हस्त-कौशल देखकर मैं प्रसन्न हुई।

देवव्रत--(चरणों में नत होकर) माँ, यह तुम्हारे ही चरणों का प्रताप है।

गंगा--बाणों की वर्षा से गंगा की गति को रोकना सरल नहीं। बेटा, तू निश्चय ही अपने पिता का नाम उज्ज्वल करेगा।

[देवव्रत पिता का नाम सुनकर उदास हो जाता है।]

गंगा--अरे, तू अचानक उदास क्यों हो गया ?

देवव्रत--माँ, तूने आज तक मुझे नहीं बताया कि मेरे जनक कौन हैं ? वे जीवित भी हैं या...

गंगा--(बीच में ही) नहीं, बेटा नहीं ! अशुभ बात मत बोल। तेरे जनक जीवित हैं।

देवव्रत—फिर मैंने उन्हें आज तक देखा क्यों नहीं ? क्या उन्होंने तुम्हारा परित्याग कर दिया है ?

गंगा—भाग्य का विधान है, बेटा ! उन्होंने मेरा परित्याग तो नहीं किया, किन्तु फिर भी ....

देवव्रत—क्या वे आजीविका के लिए किसी दूर देश में जाकर बस गये हैं, किन्तु माँ, ऐसी आजीविका भी क्या ? वर्षों से न तुम्हारी सुधि ली, और न मेरी। क्या पिताजी का हृदय बहुत कठोर है, माँ ?

गंगा—उनसा सरल और सहृदय व्यक्ति संसार में कोई और नहीं।

देवव्रत—फिर क्या कारण है ? क्या तुम्हीं उनसे रूठी हो ?

गंगा—नही बेटा ! कहा न, भाग्य का विधान है।

देवव्रत—पहेली न बुझाओ, माँ ! बताओ, कौन हैं मेरे पिता ?

गंगा—वे क्षत्रिय-कुल के दीपक हैं, बेटा।

देवव्रत—क्षत्रिय है मेरे पिता ? पर यह तो क्षत्रिय-धर्म नहीं है माँ, कि पत्नी और पुत्र के प्रति अपने कर्त्तव्य से विमुख होकर व्यक्ति उन्हें भूल ही जाये ! क्या पिताजी ने गृहस्थ-धर्म त्याग कर संन्यास ले लिया है ?

गंगा—नहीं बेटा ! तेरे पिता तो बहुत बड़े साम्राज्य के शासक हैं।

देवव्रत—आश्चर्य है ! जो पत्नी और पुत्र का पालन नहीं कर सकता, वह प्रजा का पालन कैसे करता होगा ? निश्चय ही पिताजी निरंकुश, कठोर, क्रूर और उद्दण्ड शासक होंगे।

गंगा—अशोभनीय शब्द क्यों निकालता है मुँह से ? तेरे पिता बड़े ज्ञानी, धर्मात्मा, वीर, पराक्रमी और प्रजा-पालक हैं। उनकी निर्मल कीर्ति-ध्वजा अवनी से लेकर अम्बर तक फहराती है, बेटा !

देवव्रत—फहराती होगी !

गंगा—उनके बल-विक्रम और कर्त्तव्य-ज्ञान की यश-गाथा घर-घर गायी जाती है।

देवव्रत—तू फिर पहेली बुझाने लगी, माँ ! स्पष्ट क्यों नहीं बताती, मेरे जनक कौन हैं ?

गंगा—(**हँस कर**) अधीर न हो। बताती हूँ। तेरे जनक ययाति के वंशज हैं।

देवव्रत—उनका नाम क्या है ?

गंगा—वे कुरु-कुल-मणि हैं।

देवव्रत—कुरु-कुल-मणि ?

गंगा—हाँ ! हस्तिनापुर के महान् नरेश और ....

देवव्रत—(**बीच में ही**) तो ...तो क्या महाराज शान्तनु मेरे पिता है ?

गंगा—हाँ ... वत्स ! तू हस्तिनापुर का युवराज है।

देवव्रत—तब मेरा लालन-पालन राज-प्रासाद में क्यों नही हुआ ? हम लोग परित्यक्त क्यों हैं ? माँ, तू बोलती क्यों नही ? यह क्या रहस्य है ?

गंगा—रहस्य कुछ नही, बेटा ! विधाता की लीला है।

देवव्रत—विधाता की लीला ? तेरी बातें समझ में नहीं आतीं। क्या जीवन भर मैं परित्यक्त ही रहूँगा ? पिता का वात्सल्य कभी प्राप्त न होगा ?

गंगा—होगा, अवश्य होगा, वत्स ! अब वह घड़ी दूर नहीं जब तू हस्तिनापुर के राज-प्रासाद की शोभा बनेगा। (**दुलार से**) अच्छा, अब तू अपना अभ्यास कर ! मैं तब तक पूजन कर लूँ।

[गंगा का बायीं ओर प्रस्थान।]

देवव्रत—(**स्वगत**) हूँ ... तो हस्तिनापुर-नरेश महाराज शान्तनु मेरे पिता है। कितना भाग्यशाली हूँ मैं ! गंगा जैसी जननी और शान्तनु जैसे जनक। किन्तु पिताश्री ने माँ को प्रासाद से हटा क्यों दिया ? मैं तो इसे दुर्व्यवहार ही कहूँगा। पर माँ को इससे तनिक भी क्षोभ नहीं ! कितनी लगन और ममता से मेरा पालन किया ! मुझे पिता के अभाव का अनुभव ही नहीं होने दिया ! वास्तव में माँ की महिमा अपरम्पार है।

[दाहिनी ओर से महाराज शान्तनु का प्रवेश।]

शान्तनु—युवक ! क्या तुमने ही बाणों की वर्षा से गंगा की धारा अवरुद्ध कर दी है ?

देवव्रत—**(चौंक कर)** हाँ . . . महाराज . . . ।

शान्तनु—तुम . . . तुम मुझे जानते हो ?

देवव्रत—हस्तिनापुर-नरेश को कौन नहीं जानता ?

शान्तनु—**(हँस कर)** मैं तुम्हारे उत्तर से प्रसन्न हुआ युवक !

देवव्रत—यह मेरा सौभाग्य है ।

शान्तनु—तुम्हारा हस्त-लाघव अद्‌भुत है, युवक ! तुम्हें धनुर्वेद की शिक्षा किसने दी ?

देवव्रत—माँ के पवित्र चरणों में बैठ कर ही मैंने सब कुछ सीखा है ।

शान्तनु—धन्य है तुम्हारी माँ । वह पिता कितना सौभाग्यशाली है जिसके वंश का नाम तुम उज्ज्वल करोगे !

देवव्रत—नहीं महाराज ! धन्य तो मैं हूँ जो मुझे ऐसे कुल में जन्म मिला जिसकी कीर्ति-ध्वजा समस्त आर्यावर्त में फहरा रही है ।

शान्तनु—अपने कुल का नाम बताओ, युवक !

देवव्रत—समय पर ज्ञात हो जायेगा, महाराज !

शान्तनु—क्या तात्पर्य है तुम्हारा ?

देवव्रत—माँ अभी पूजन कर रही है । आती ही होंगी । वही आपको बता सकेंगी ।

शान्तनु—मैं तुम्हारी माँ के दर्शन करना चाहता हूँ । जाकर देखो, अभी पूजा समाप्त हुई या नहीं !

देवव्रत—जो आज्ञा, महाराज !

[देवव्रत बायीं ओर जाता है ।]

शान्तनु—**(स्वगत)** कितना ओजस्वी है यह युवक ! चेहरे पर कितना तेज है ! लगता है, जैसे कोई देव-पुत्र हो । कितना सौम्य और शिष्ट ! देख कर आँखें तृप्त हो गयीं । हृदय में स्नेह का सागर लहराने लगा । बाहु उसे अंक में भरने के लिए व्याकुल हो उठे । क्यों . . . ? वर्षों का

सोया वात्सल्य आज अचानक क्यों जाग पड़ा ? ओह . . . ! मेरा अपना पुत्र भी तो इतना ही बड़ा होगा . . . ! पर कौन जाने . . . है भी या नहीं !

[शान्तनु सर झुका कर टहलते हैं। गंगा का प्रवेश।]

गंगा—महाराज . . . ! प्रणाम स्वीकारें !

शान्तनु—**(चौंक कर)** तुम . . . ? देवि गंगे . . . ! तुम उस युवक की माँ हो ?

गंगा—हाँ महाराज ! और आप उसके पिता हैं।

शान्तनु—**(हर्षोल्लास से)** तो . . . . तो वह हमारा पुत्र है . . . . . हमारा . . . . ! तभी मेरा हृदय उसे प्यार करने के लिए आकुल हो रहा था। बुलाओ उसे ! उसे हृदय से लगा कर, जी भर कर देख लूँ।

गंगा—**(मुस्कराकर)** अधिक उतावले न हों, महाराज ! अब तो देवव्रत आपके पास रहेगा ही। मैंने उसे पाल-पोस कर बड़ा कर दिया। माँ का कर्त्तव्य पूरा हुआ। आप पिता का धर्म पूरा करें।

शान्तनु—करूँगा, अवश्य करूँगा। उसकी शिक्षा-दीक्षा का ऐसा प्रबन्ध करूँगा कि शास्त्र और शस्त्र-विद्या मे उसकी समानता करने वाला कोई न होगा। तुम चिन्ता न करो, देवि !

गंगा—मैं आश्वस्त हुई।

शान्तनु—देवि गंगे, क्या तुम भी राज-प्रासाद में नहीं रह सकती ?

गंगा—यह मत भूलें महाराज कि मैं महर्षि जन्हु की कन्या गंगा हूँ। आप मुझे बाँध कर नही रख सकते। मैं नारी-रूप धर कर आपकी भार्या बनी, इसका भी एक प्रयोजन था।

शान्तनु—तेजपुत्र वसुओं को वशिष्ठ ने मर्त्यलोक में जन्म लेने का शाप दिया था। उन्होंने तुमसे माँ बनने की प्रार्थना की। यही न ? यह तुम मुझे बता चुकी हो।

गंगा—उन्होंने यह वचन भी ले लिया था कि जन्म होते ही मैं उन्हें गंगा में प्रवाहित कर दूंगी, जिससे वे शीघ्र ही शापमुक्त हो सकें।

शान्तनु—और तुमने सात नवजात शिशुओं को प्रवाहित कर दिया। विवाह के पूर्व तुमने मुझसे वचन ले लिया था कि मैं तुम्हारे किसी कार्य में बाधा नहीं डालूंगा। इसीलिए मैं हृदय पर पाषाण रख कर मौन रहा।

गंगा—किन्तु आठवीं बार आपका धीरज डोल गया। आपने आठवें शिशु को प्रवाहित नहीं करने दिया।

शान्तनु—इसी बात पर तुम रुष्ट हो गयीं। हमारे सम्बन्ध समाप्त हो गये।

गंगा—किन्तु वचन के अनुसार मैंने आठवें शिशु का पालन किया। महाराज, यह बालक अत्यन्त पराक्रमी है। इससे कुरुवंश का मान बढ़ेगा। वशिष्ठ, शुक्राचार्य, वृहस्पति, और परशुराम जैसे गुरुओं ने इसे शास्त्र और शस्त्रों की शिक्षा दी है। अपने कुल-भूषण को लेकर आप हस्तिनापुर जायें।

शान्तनु—देवि, मैं कृतार्थ हुआ।

गंगा—(**नेपथ्य की ओर मुख करके**) देवव्रत ! बेटा देवव्रत ! !

देवव्रत—(**नेपथ्य से**) आया माँ ! (**प्रवेश करके**) क्या आज्ञा है ?

गंगा—बेटा, अपने पिताश्री को प्रणाम करो !

देवव्रत—(**शान्तनु के चरणों में झुककर**) सादर प्रणाम, पिताश्री !

शान्तनु—(**देवव्रत को उठा कर हृदय से लगाते हुये**) बेटा....! वर्षों बाद आज आँखों को ज्योति मिली।

गंगा—अब मुझे आज्ञा दें, महाराज ! मेरा कार्य पूरा हुआ।

शान्तनु—लज्जित न करें देवि ! मैं एक साधारण मनुष्य हूँ और आप....

गंगा—अच्छा...! तुमसे आप होगयी ! (**देवव्रत से**) बेटा, अब यही तुम्हारे पिता हैं और यही माँ। मैं जा रही हूँ।

देवव्रत—(**चरण छूकर**) माँ, पुत्र को अन्तिम आशीष तो देती जाओ।

गंगा—(**अवरुद्ध कंठ से**) बेटा, युग-युग तक तुम्हारा नाम अमर

रहे ! यशस्वी हो ! पिता की आज्ञा का पालन धर्म समझ कर करना ! मनीषियों ने ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र—इन चारों वर्णों के लिए धर्म-कर्म की व्यवस्था की है। किन्तु बेटा, इन सबसे ऊपर एक धर्म और है... वह है मानव-धर्म। सहानुभूति, करुणा, दया, प्रेम और त्याग, मानव-धर्म के मूल आधार हैं। इन्हें न भूलना, बेटा !

देवव्रत—वचन देता हूँ माँ ! मैं मानव-धर्म को सर्वोपरि समझूंगा।

गंगा—कल्याण हो !

[गंगा का बायीं ओर प्रस्थान। शान्तनु और देवव्रत उस ओर देखते रहते हैं। धीरे-धीरे मंच पर अँधेरा छा जाता है।]

दूसरा दृश्य

स्थान—यमुना-तट पर मत्स्यगंधा की कुटी।

समय—दिन का तीसरा प्रहर।

[कुटी के बाहर मत्स्यगंधा मछली पकड़ने का जाल सुखा रही है। वह अपने साधारण वस्त्रों में ही अनिंद्य सुन्दरी लग रही है।]

मत्स्यगंधा—ओह ! तीसरा पहर हो गया और बापू अभी तक नहीं आये ! लगता है, आज मछली पकड़ने के लिए कहीं दूर निकल गये हैं। किन्तु यमुना बाढ़ पर है और हमारी नाव पुरानी। यही सोच कर जी घबरा रहा है। हे यमुना मैया, बापू की रक्षा करना !

[वीर-वेश में शान्तनु का प्रवेश।]

शान्तनु—इधर से कोई मृग तो नहीं गया ?

मत्स्यगंधा—(**उठकर**) नहीं तो। (**शान्तनु के अस्त्र-शस्त्र देखकर**) क्या आप अहेरी हैं ?

शान्तनु—देवि ! मैं यहाँ आने के पूर्व तक अहेरी ही था। धनुष पर बाण चढ़ाये मृग का पीछा कर रहा था। किन्तु अब आखेट नहीं करूँगा।

[शान्तनु बाण तूणीर में रख लेते हैं।]

मत्स्यगंधा—क्यों ? यह अचानक मन में दया क्यों उमड़ आयी ?

शान्तनु—दया नहीं उमड़ी देवि, असमर्थता उमड़ी है।

मत्स्यगंधा—वह कैसे ?

शान्तनु––आखेटक स्वयं किसी के दृग-शरों से आहत हो गया है।

मत्स्यगंधा––आप आहत हो गये है ? (**भोलेपन से**) देखूँ, कहाँ चोट लगी है ?

शान्तनु––(**हँस कर**) बहुत भोली हो तुम। चोट मेरे हृदय मे लगी है। देखोगी ?

मत्स्यगंधा––(**लजा कर**) आप. . .आप यह क्या कह रहे है ?

शान्तनु––सत्य कह रहा हूं। तुम्हारे अतुल रूप ने मुझे मोह लिया है। क्या नाम है तुम्हारा ?

मत्स्यगंधा––मत्स्यगंधा।

शान्तनु––मत्स्यगंधा ? तुम्हारे शरीर से मछली की दुर्गन्ध तो नही आती ! (**सूंघने का उपक्रम करके**) अहा ! कितनी मादक सुवास है।

मत्स्यगंधा––पहले मेरे शरीर मे मछली की दुर्गन्ध ही आती थी।

शान्तनु––फिर यह सुवास कैसे आ गयी ?

मत्स्यगंधा––महर्षि पाराशर की कृपा से। एक बार मैंने उन्हे अपनी नाव से यमुना पार कराई थी।

शान्तनु––मुझे भी पार करा दो, देवि ! मै अपनी जीवन-नौका की पतवार सदा-सदा के लिए तुम्हें सौंपना चाहता हूँ।

मत्स्यगंधा––मैं समझी नहीं।

शान्तनु––समझाता हूँ। पहले अपना परिचय दे दूँ। मै हूँ हस्तिनापुर का नरेश शान्तनु।

मत्स्यगंधा––(**आदर से हाथ जोड़कर**) महाराज, अपराध क्षमा करें। मैं पहचान नही पायी थी।

शान्तनु––(**हँसकर**) तुम्हारा अपराध क्या है, जो क्षमा माँगती हो। देवि, मैं. . . मैं . . . .तुम्हें हस्तिनापुर की रानी बनाना चाहता हूँ। बोलो मुझसे विवाह करोगी ?

मत्स्यगंधा––महाराज, मैं तो चरणों की दासी हूँ।

शान्तनु––नहीं, तुम मेरे हृदय-मन्दिर की देवी हो।

मत्स्यगंधा—मैं निर्धन धीवर-कन्या हूँ, महाराज ! आपके लिए राजकुमारियों की कमी नहीं है।

शान्तनु—प्रेम का धर्म ऊँच-नीच, धनी निर्धन, राजा-प्रजा में भेद नही करता।

मत्स्यगंधा—मेरी झोली में इतना वैभव समायेगा कैसे ? नहीं महाराज, आप मेरे रूप-मोह में न पड़ें। मैं बडी अभागिनी हूँ। आपके योग्य नहीं।

शान्तनु—रत्न अपना मूल्य नही जानता, देवि ! मेरा निश्चय अटल है। बस, तुम्हारी स्वीकृति चाहिये।

मत्स्यगंधा—मैं...मैं...कैसे स्वीकृति दे सकती हूँ ? आप बापू से बात कीजिये। (**नेपथ्य की ओर देखकर**) वह आ रहे है।

शान्तनु—(**उसी ओर देखकर**) हाँ, साथ में हमारे मंत्री भी है।

मत्स्यगंधा—मुझे आज्ञा दें, महाराज !

[**मत्स्यगंधा कुटी के अन्दर जाती है। धीवर और मंत्री का प्रवेश।**]

मंत्री—आप यहाँ हैं महाराज। मैं तो चिन्तित हो रहा था। (**धीवर से**) खड़े-खड़े मुँह क्या ताक रहे हो। हस्तिनापुर-नरेश, महाराज शान्तनु को दंडवत् करो।

धीवर—(**चरणों पर गिरकर**) महाराज की जय हो ! आपके आगमन से कुटिया पवित्र हो गयी।

शान्तनु—(**उठाते हुये**) उठो...भाई उठो ! हम भी तुम्हारी तरह मनुष्य ही हैं, देवता नहीं।

धीवर—राजा तो देवता ही होता है, महाराज ! (**हाथ जोड़कर**) कहिये क्या सेवा-सत्कार करूँ ?

शान्तनु—सेवा-सत्कार नहीं, हमें तुम्हारा प्रेम चाहिए।

धीवर—प्राण दे सकता हूँ महाराज ! आप आज्ञा दें।

शान्तनु—तुम्हारे एक कन्या है ?

धीवर—है महाराज ! बहुत भोली और नादान है। क्या कोई भूल-चूक हो गयी उससे ? अनजान में निरादर कर बैठी ?

मंत्री—यदि ऐसी बात है तो बतायें, महाराज ! उसे कठोर से कठोर दंड दिया जायेगा।

शान्तनु—ऐसी कोई बात नही है, मंत्री जी ! (**धीवर से**) मैंने तुम्हारी पुत्री को देखा है।

[**धीवर सिर झुकाये खड़ा रहता है। मंत्री चौंककर शान्तनु की ओर देखता है।**]

शान्तनु—मैं उसके रूप-गुण, सौन्दर्य-शील से प्रभावित हुआ हूँ। मेरी हार्दिक इच्छा है कि वह हस्तिनापुर की राज-महिषी बने।

मंत्री—महाराज ! यह आप क्या कह रहे है ?

धीवर—स्वामी, सेवक से परिहास ठीक नहीं।

शान्तनु—यह परिहास नही, मैंने सम्पूर्ण गंभीरता के साथ अपनी इच्छा तुम्हारे सामने रक्खी है। बोलो, तुम मेरे साथ अपनी पुत्री का विवाह करने के लिए प्रस्तुत हो ?

मंत्री—महाराज, आप अपने निश्चय पर पुनः विचार करें। शीघ्रता में किये गये निर्णय बहुधा अनुचित ही होते हैं।

शान्तनु—मंत्री जी, यह राज-काज नहीं है जिसमें आपकी मंत्रणा का मूल्य हो। (**धीवर से**) तुम मौन क्यों हो ? मेरे प्रश्न का उत्तर दो।

धीवर—(**विनम्रता से**) महाराज, मेरी समझ में नही आता, क्या उत्तर दूं ? आप राजा है और हम प्रजा। नीति तो यही कहती है कि वैर और प्रीति समान लोगों में ही उचित है।

शान्तनु—नीति का उपदेश हमें न दो। इतना तो हम भी जानते हैं। जो मैं पूछता हूँ, उसका उत्तर दो। बोलो, तुम अपनी पुत्री का विवाह मेरे साथ करने को प्रस्तुत हो या नही ?

मंत्री—महाराज, यदि आपने निश्चय ही कर लिया है तो फिर इससे क्या पूछना ? हम कन्या-हरण करके.....

शान्तनु—(**बीच में ही क्रुद्ध होकर**) मंत्री जी ! आप मौन रहें ! हम कन्या के पिता के पास याचक बन कर आये है, दस्यु या वंचक बनकर नहीं।

मं—भूल हुई महाराज ! क्षमा करें। (**धीवर से**) स्वीकार क्यों नहीं कर लेते ? तुम्हारी पुत्री अपने पूर्व जन्म के पुण्य के कारण ही राजरानी बन रही है।

धीवर—मंत्री जी, पुत्री का विवाह तो मुझे करना ही है, किन्तु....

शान्तनु—किन्तु क्या ?

धीवर—महाराज, मेरे मन में एक शंका है। उसका निवारण कर दें।

शान्तनु—कहो, तुम्हें क्या कहना है ?

धीवर—आप मेरी पुत्री से विधिवत् विवाह ही करेंगे न ?

शान्तनु—हाँ।

धीवर—उसे उप-पत्नी तो नहीं बनायेंगे ?

शान्तनु—नहीं ! वह राज-महिषी होगी।

धीवर—तब तो राज-सिंहासन पर मेरी पुत्री के पुत्र का ही अधिकार होगा ?

शान्तनु—(**शंकित होकर**) तुम कहना क्या चाहते हो ?

धीवर—सीधी बात है महाराज ! यदि सिंहासन कुमार देवव्रत को मिला, तब मेरी पुत्री के पुत्र तो दास बन कर रहेंगे।

शान्तनु—तुम कदाचित देवव्रत को जानते नहीं। तभी ऐसा कह रहे हो। वह अपने भाइयों को प्राणों से अधिक मानेगा।

धीवर—यह कहने की बातें है, महाराज ! सगे और सौतेले में अन्तर होता है। यदि आप यह वचन दें कि आप के बाद मेरी पुत्री का पुत्र ही राज्य का अधिकारी होगा, तो मैं अपनी बेटी का विवाह आपके साथ करने के लिए तत्पर हूँ।

[शान्तनु चिन्तित और व्यग्र होकर सिर झुका लेते हैं। मंत्री भी धीवर की बात सुनकर उद्विग्न हो जाता है।]

मंत्री—तुम्हारी यह माँग सर्वथा अनुचित है।

धीवर—क्यों ?

मंत्री—कुमार देवव्रत अग्रज हैं। सिंहासन पर उन्ही का अधिकार होगा।

धीवर—ठीक है। मैं भी युवराज देवव्रत का हितैषी हूँ। राज्य उन्ही को मिले। बस, मेरी पुत्री का ध्यान छोड़ना होगा महाराज को।

शान्तनु—तुम और कुछ माँग लो, पर कुमार देवव्रत का अधिकार न माँगो।

धीवर—कुमार देवव्रत का अधिकार नही, मैं तो अपने दौहित्र का अधिकार माँगता हूँ। जब सत्यगंधा आपकी पत्नी बनेगी, तब उसके पुत्र का सिंहासन पर क्या कोई अधिकार नही होगा ?

मंत्री—राज्य-सिंहासन का सपना देखने वाले मूढ ! तू कदाचित् अपनी स्थिति भूल गया है। महाराज तेरी पुत्री को अपनी रानी बनाना चाहते है, यह तो तेरे लिए सौभाग्य की बात है। वह प्रासाद मे सुख-चैन से रहेगी, उसकी सन्तान वैभव मे पलेगी। अब भी मान जा ! अपनी मूर्खतापूर्ण हठ छोड दे ! नही तो, कोई धीवर ही मिलेगा तेरी पुत्री को और वह जीवन भर दुःखी दरिद्र ही रहेगी।

धीवर—मंत्री जी, आप तो बुद्धिमान् है। आपसे क्या कहूँ ? धीवर युवक से विवाह करके मेरी नाक तो नीची नही होगी।

मंत्री—और महाराज से ब्याहेगा तो तेरी नाक कट जायेगी, क्यों ?

धीवर—लोग यही कहेंगे कि इस स्वार्थी और लोभी पिता ने धन लेकर अपनी पुत्री बेच दी। मंत्री जी, मैं अपनी पुत्री का विवाह करना चाहता हूँ, उसे बेचना नही चाहता।

मंत्री—तेरी मति भ्रष्ट हुई है, मूर्ख !

शान्तनु—नही मंत्री जी नही ! इसे कुछ न कहो। इसकी बात भी

तर्क-सगत है। चलो मंत्री जी ! लगता है, आजीवन मुझे दहना ही पड़ेगा। कुमार देवव्रत को अधिकार-च्युत कर नहीं सकता और सुन्दरी मत्स्यगंधा को भी भुला नहीं सकता।

[शान्तनु और मंत्री का प्रस्थान। धीवर पल भर उधर देखता रहता है। फिर कुटिया में जाता है। मंच पर धीरे-धीरे अँधेरा छा जाता है।]

तीसरा दृश्य

स्थान—हस्तिनापुर के राज-प्रासाद में कुमार देवव्रत का कक्ष।
समय—प्रातःकाल।

[देवव्रत चिन्तित और उदास मुद्रा में टहल रहा है। लगता है, वह रात में ठीक से सो भी नहीं सका है।]

देवव्रत—(**स्वगत**) कितना अभागा है वह पुत्र जो पिता का दुःख नहीं बाँट सकता। पिताश्री कितने दुर्बल और मलीन हो गये है? न जाने क्या रोग है? वैद्यराज कहते हैं, व्याधि तन की नहीं, मन की है! ऐसी कौन-सी चिन्ता है जो पिताश्री को तिल-तिल घुला रही है। उनका स्वास्थ्य दिन-दिन गिर रहा है और मैं असहाय-सा देख रहा हूँ। कुछ भी नही कर सकता। पिताश्री से चिन्ता का कारण पूछता हूँ तो फीकी मुस्कान के साथ कहते है—जिसके देवव्रत जैसा पुत्र हो, उसे किस बात की चिन्ता। और इधर यह देवव्रत आज अपने को कितना अशक्त और निरीह अनुभव कर रहा है।

[मंत्री का प्रवेश।]

मंत्री—कुमार की जय हो!

देवव्रत—पधारिये, मंत्री जी! पिताश्री का स्वास्थ्य कैसा है?

मंत्री—कोई सुधार नहीं।

देवव्रत—आप वैद्यराज से मिले?

मंत्री—हाँ ! उन्ही से मिलकर आ रहा हूँ।

देवव्रत—क्या कहा उन्होंने ?

मंत्री—वही पुरानी बात। व्याधि तन की नही, मन की है।

देवव्रत—मन की व्याधि...अन्तर्व्यथा ! मंत्री जी, पिताश्री की दीन दशा मुझसे देखी नही जाती। उनकी चिन्ता का कारण जानने की चेष्टा करें।

मंत्री—(**मन्द स्वर में**) कारण मै जानता हूँ, कुमार !

देवव्रत—(**व्यग्रता से**) आप जानते है ? तो अभी तक क्यों नहीं बताया ? शीघ्र बताइये मंत्री जी, पिताश्री के दुःख का कारण कौन है ?

मंत्री—आप !

देवव्रत—(**चौंक कर**) मैं ? यह आप क्या कहते है, मंत्री जी ?

मंत्री—ठीक कह रहा हूँ, कुमार !

देवव्रत—मैं...पिता की व्यथा का कारण ? धिक्कार है मुझे ! बताइये मंत्री जी, मेरे किस कार्य ने महाराज का मन दुखाया है ?

मंत्री—मेरा यह तात्पर्य नही था, कुमार !

देवव्रत—फिर क्या तात्पर्य है ?

मंत्री—महाराज का मन आपको लेकर भयंकर द्वन्द्व में फँस गया है।

देवव्रत—कैसे ? स्पष्ट बताइये।

मंत्री—सुनिये, कुमार ! मैं कहना तो नही चाहता था, परन्तु महाराज की गिरती हुई दशा देखकर अब मौन नही रहा जाता।

देवव्रत—भूमिका छोड़िये, मंत्री जी ! मूल बात पर आइये।

मंत्री—एक बार महाराज आखेट के लिए यमुना के कछार में गये थे। मै भी साथ था। वहाँ उन्होंने एक धीवर की सुन्दर कन्या देखी और वे उस पर आसक्त हो गये। महाराज ने धीवर से कहा कि हम तुम्हारी पुत्री से विवाह करना चाहते है।

देवव्रत—यह तो राजोचित कार्य ही है। धीवर को अपना भाग्य सराहना चाहिये कि उसकी पुत्री प्रतापी कुरु-वंश की वधू बनेगी।

मंत्री––धीवर ने भाग्य को तो सराहा परन्तु उसने कहा.....

[मंत्री बोलते-बोलते रुक जाता है।]

देवव्रत––आप मौन क्यों हो गये ? बोलिये क्या कहा उसने ?

मंत्री––उसने महाराज को विकट दुविधा में डाल दिया।

देवव्रत––कैसी दुविधा ?

मंत्री––अब क्या बताऊँ कुमार ? मुझे....

देवव्रत––संकोच त्याग दें, मंत्री जी ! बताइये, क्या कहा धीवर ने ?

मंत्री––उसने महाराज के सामने एक ऐसी शर्त रख दी जिसे वे स्वीकार न कर सके।

देवव्रत––(**व्यग्रता से**) आप शर्त क्यों नहीं बताते ?

मंत्री––धीवर ने कहा कि मैं अपनी पुत्री आपको तभी ब्याह सकता हूँ जब आप उसके पुत्र को राज-सिंहासन देने का वचन दें।

देवव्रत––इसमें दुविधा की क्या बात है ? महाराज यह वचन बड़ी सरलता से दे सकते थे।

मंत्री––इस वचन का अर्थ है आपको राज्याधिकार से वंचित करना।

देवव्रत––पिताश्री के सुख के लिए मै राज्याधिकार क्या, जीवन तक त्याग सकता हूँ।

मंत्री––पर महाराज तो आपके साथ अन्याय नहीं कर सकते। आप ही हस्तिनापुर के युवराज है और सिंहासन पर आपका ही अधिकार है।

देवव्रत––पिताश्री की भावना का मैं आदर करता हूँ। उन्होंने पिता का धर्म पूरा किया। अब मैं पुत्र का धर्म निबाहूँगा। मंत्री जी, मुझे तुरन्त उस धीवर के पास ले चलिये। मैं उसे आश्वासन दूँगा कि मैं हस्तिनापुर के सिंहासन पर आजीवन अपना अधिकार नहीं जताऊँगा।

मंत्री––यह आप क्या कह रहे है, कुमार ?

देवव्रत––मैंने कोई ऐसी बात तो नहीं कही है, जो समझ के बाहर हो।

मंत्री––किन्तु सिंहासन पर आपका ही अधिकार है।

देवव्रत––मै उसे त्यागता हूँ।

मंत्री—यह तो प्रजा के साथ अन्याय होगा।

देवव्रत—प्रजा की सेवा मैं सिंहासन से दूर रहकर भी कर सकता हूँ, मंत्री जी! राज्याधिकार त्यागने से मेरा लोक-सेवा का व्रत भंग नहीं होगा।

मंत्री—किन्तु एक धीवर-कन्या का पुत्र हस्तिनापुर के पवित्र सिंहासन पर बैठे, यह कहाँ तक उचित है?

देवव्रत—धीवर-कन्या विवाह के बाद कुरु-वंश की वधू हो जायेगी। उसके पुत्र की धमनियों में भी वही रक्त प्रवाहित होगा जो मेरी धमनियों में हो रहा है। आप व्यर्थ की शंका न करें, मंत्री जी! और फिर मानव-धर्म की दृष्टि में न कोई छोटा है न बड़ा, न कोई ऊँच है, न नीच।

मंत्री—किन्तु कुमार.....।

देवव्रत—तर्क के लिए समय नहीं है। महाराज की जीवन-रक्षा के लिए मैं महान् से महान् उत्सर्ग कर सकता हूँ। राज्य और सिंहासन तो नगण्य हैं। चलिये, मुझे उस धीवर के पास शीघ्र ले चलिये!

मंत्री—आइये कुमार!

[दोनों का प्रस्थान। मंच अंधकार में डूब जाता है।]

चौथा दृश्य

स्थान—यनामु-तट पर मत्स्यगंधा की कुटी।
समय—दोपहर।

[धीवर और मत्स्यगंधा कुटी के बाहर वार्तालाप कर रहे हैं।]

धीवर—बेटी, आज तो यमुना मैया ने हमारी प्रार्थना सुन ली। ढेर सारी मछलियाँ मिली है।

मत्स्यगंधा—हाँ, बापू ! इतनी मछलियाँ तो कभी नहीं मिली।

धीवर—यमुना मैया ऐसे ही दया करती रहीं तो हम शीघ्र ही धनवान् हो जायेंगे। तब तो मैं तेरा विवाह बड़ी धूमधाम से करूँगा।

मत्स्यगंधा—(**लजाकर**) जाओ बापू, मैं तुमसे नही बोलूँगी।

धीवर—अरे रूठ गयी, मेरी बिटिया ! बेटी, चाहता तो मैं भी हूँ कि तू राज-वधू बने, पर राजाओं का मन बड़ा चंचल होता है। उनके चित्त का क्या ठिकाना ? आज प्रसन्न हैं, तो राजरानी; कल अप्रसन्न हो गये तो दासी से भी गयी बीती। इसीलिए उस दिन मैंने महाराज के सामने अपनी शर्त रख दी थी।

मत्स्यगंधा—सुना है, महाराज उसी दिन से अस्वस्थ हैं।

धीवर—मैं जानता हूँ तेरे मन की बात। पर बेटी, तू अभी नादान है। मैं ऊँच-नीच देख चुका हूँ।

[दूर पर रथ की ध्वनि सुनाई पड़ती है।]

धीवर—ऐं...लगता है, महाराज फिर आये हैं। तू अन्दर जा !

[मत्स्यगंधा अन्दर जाती है। मंत्री और देवव्रत का प्रवेश।]

धीवर—ओहो...! मंत्री जी हैं! विराजिये....विराजिये!

मंत्री—युवराज देवव्रत को प्रणाम करो!

धीवर—अच्छा! आप ही है युवराज? दंडवत करता हूँ कुमार! कहिये, इस निर्धन की कुटी पवित्र करने कैसे पधारे?

देवव्रत—मैं तुमसे कुछ आवश्यक बातें करने आया हूँ।

धीवर—अहो भाग्य! कीजिये।

देवव्रत—मेरे पिताश्री, हस्तिनापुर-नरेश महाराज शान्तनु अस्वस्थ हैं। उनकी दशा निरंतर बिगड़ती जा रही है।

धीवर—यमुना मैया महाराज का मंगल करें!

देवव्रत—महाराज बहुत व्यथित हैं और उस व्यथा का कारण तुम हो।

धीवर—मैं? यह आप क्या कहते है, कुमार? मैं महाराज के लिए अपने प्राण तक दे सकता हूँ।

मंत्री—परन्तु पुत्री नहीं दे सकते!

धीवर—पुत्री तो पराया धन होती है, मंत्री जी! किसी न किसी को तो देना ही है। महाराज मेरे जमाई बने, इससे बढ़कर प्रसन्नता की बात और क्या हो सकती है?

मंत्री—फिर उस दिन शर्त क्यों रक्खी?

धीवर—शर्त तो अब भी है। (**देवव्रत से**) कुमार, आप ही न्याय करें! मेरी शर्त है....

देवव्रत—(**बीच में ही**) मैं पूरी बात मंत्री जी से सुन चुका हूँ। महाराज को तुम्हारी शर्त स्वीकार है।

धीवर—स्वीकार है? और आप...?

देवव्रत—मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि जीवन भर हस्तिनापुर के सिंहासन पर अपना अधिकार नहीं जताऊँगा। सिंहासन पर देवी मत्स्यगंधा का पुत्र ही बैठेगा।

धीवर—कुमार, आपकी प्रतिज्ञा सुनकर मैं आश्वस्त होगया।

मंत्री—अब तो अपनी बेटी महाराज को ब्याहोगे ?

धीवर—मुझे सोचने दीजिये, मंत्री जी ! (**सोचने की मुद्रा में स्वगत**) हूँ. . .कुमार देवव्रत ने हस्तिनापुर के सिंहासन पर अधिकार न जताने की प्रतिज्ञा की है ! तब तो सिंहासन मेरे दौहित्र को ही मिलेगा। ठीक ! परन्तु. . .बाद में. . . .? नहीं, नहीं. . .? आगे समस्या उठ सकती है ! (**देवव्रत से**) कुमार, अभी एक शंका रह गयी है।

देवव्रत—कैसी शंका ?

धीवर—आप सिंहासन पर नहीं बैठेंगे न ?

देवव्रत—प्रतिज्ञा कर चुका हूँ।

धीवर—और आपकी सन्तान ?

मंत्री—तुम कुमार की सन्तान को भी राज्याधिकार से वंचित रखना चाहते हो ?

धीवर—मैं अधिकार देने या लेने वाला कौन हूँ ? मैं तो सीधी-सी बात कह रहा हूँ कि यदि कुमार के पुत्र ने सिंहासन पर अधिकार जमाना चाहा तो क्या होगा ?

मंत्री—बहुत चतुर बनने की चेष्टा न करो।

धीवर—सुन रहे है, कुमार ? आप ही बताये, इसमें चतुराई की क्या बात है ? मान लीजिये, मेरा दौहित्र सिंहासन पर बैठा और आपके पुत्र ने राज्य के लिये अस्त्र-शस्त्र उठाये। तो निश्चय ही गृह-युद्ध होगा। उस गृह-युद्ध में पराजय मेरे दौहित्र की ही होगी क्योंकि अन्य नरेश आपके पुत्र का ही साथ देंगे। नहीं कुमार, मै आपके पुत्रों से वैर मोल नहीं ले सकता।

मंत्री—तुम तो पीढ़ियों तक का हिसाब-किताब बैठा रहे हो ?

धीवर—मूढ़ ठहरा न ! जो मन मे आया सो कह दिया। नहीं कुमार, हमें क्षमा करें। मेरी बेटी, इसी कुटिया में ठीक है।

देवव्रत—ऐसा न कहो। महाराज का जीवन संकट में है।

धीवर—मैं विवश हूँ, कुमार ! मेरी शंका. . . .

देवव्रत—उसका भी समाधान है मेरे पास। सुनो, मैं देवताओं को साक्षी करके प्रण करता हूँ कि आजीवन अविवाहित रहकर ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करूँगा !

मंत्री—कुमार ! आपने ऐसी भाष्म प्रातज्ञा कर डाला ! धन्य ह आप ! आज से हम आपको भीष्म ही कहेंगे।

देवव्रत—अब तो आश्वस्त हुए तुम ?

धीवर—आप विवाह नहीं करेंगे ?

देवव्रत—नहीं। जब विवाह नही करूँगा तो सन्तान भी नहीं होगी। तुम्हारा दौहित्र निष्कंटक होकर राज्य करेगा।

धीवर—अब ठीक है।

मंत्री—तो देवी मत्स्यगंधा को हमारे साथ जाने की आज्ञा दो। उधर रथ खड़ा है। हस्तिनापुर में विधिवत विवाह होगा।

धीवर—जैसी आज्ञा, मंत्री जी ! (**पुकार कर**) बेटी, मत्स्यगंधा, बाहर आओ।

[मत्स्यगंधा बाहर आती है।]

मंत्री—महारानी की जय हो !

देवव्रत—मातुश्री, पुत्र देवव्रत का प्रणाम स्वीकारें !

मत्स्यगंधा—प्रसन्न रहो, वत्स ! तुम्हारा जैसा पुत्र पाकर मेरा जीवन धन्य हो गया।

धीवर—कुमार के साथ हस्तिनापुर जाओ, मत्स्यगंधा !

देवव्रत—मत्स्यगंधा नहीं आज से मेरी माँ का नाम हुआ सत्यवती। चलिये मातुश्री !

[सबका प्रस्थान। मंच पर अंधेरा हो जाता है।]

पाँचवाँ दृश्य

स्थान—हस्तिनापुर के राज-प्रासाद में महाराज शान्तनु का कक्ष।
समय—दिन का तीसरा प्रहर।

[शान्तनु शैय्या पर लेटे हैं। वैद्यराज निकट ही बैठे उनकी नाड़ी देख रहे हैं।]

वैद्यराज—महाराज इस समय तो नाड़ी की गति कुछ ठीक है।

शान्तनु—(**दुर्बल स्वर में**) मिथ्या दिलासा न दो, वैद्यराज ! मैं जानता हूँ, मेरा रोग ठीक नहीं हो सकता।

वैद्यराज—हताश न हों, महाराज !

शान्तनु—प्रश्न हताश होने न होने का नही है। अपनी नियति मैं जानता हूँ। जो मानसिक आन्दोलन मुझे अस्त-व्यस्त किये है, उससे मुक्ति पाने की कोई राह नहीं।

वैद्यराज—आपके लिए क्या असम्भव है ? क्या अभाव है आपको ?

शान्तनु—ऐसा अभाव जिसकी पूर्ति सम्भव नहीं। वैद्यराज, आप मेरी वेदना का अनुमान नहीं लगा सकते।

वैद्यराज—अपराध क्षमा हो, महाराज ! इतना अनुमान तो मैंने लगा ही लिया है कि आपकी व्याधि तन की नहीं, मन की है।

शान्तनु—और मन की व्याधि का कोई उपचार नहीं होता !

[भीष्म का प्रवेश।]

भीष्म––उपचार हर व्याधि का होता है, पिताश्री ! बस, प्रयास भर करने की देर है।

शान्तनु––वत्स देवव्रत ! आओ ! बैठो। मुझे तुमसे आवश्यक बात करनी है।

वैद्यराज––(**उठकर**) मुझे आज्ञा दें, महाराज !

[वैद्यराज का प्रस्थान।]

भीष्म––(**बैठकर**) आपका स्वास्थ्य अब कैसा है ?

शान्तनु––जीवन की अंतिम घड़ियाँ ही समझो। इसीलिए चाहता हूँ कि तुम शीघ्र ही किसी योग्य कन्या से विवाह कर लो। अपनी आँखों से पुत्र-वधू को तो देख लूँ।

भीष्म––पिताश्री, अपने जीवन से इतने निराश क्यों है ? भगवान् ने चाहा तो आप शीघ्र ही निरोग हो जायेंगे। अभी तो आपको वर्षों राज्य करना है।

शान्तनु––नहीं वत्स, मेरा रोग ठीक नहीं हो सकता। मेरे रोग का कोई उपचार नहीं।

भीष्म––है...अवश्य है। आपने मुझ पर विश्वास नहीं किया, इसी का दुःख है। यदि आप बता देते तो...

शान्तनु––क्या बता देता....?

भीष्म––अपने मन की व्यथा का रहस्य।

शान्तनु––रहस्य...? नहीं, नहीं ! रहस्य क्या है ?

भीष्म––बताऊँ...? (**पुकार कर**) मंत्री जी, मातुश्री को लेकर आ जाइये।

[सत्यवती के साथ मंत्री का प्रवेश। सत्यवती को देखकर शान्तनु उठकर बैठ जाते हैं। उनके चेहरे पर हर्ष और विस्मय के चिन्ह उभरते हैं।]

शान्तनु––देवि...तुम...

सत्यवती––(**शान्तनु के चरण छूकर**) आपके चरणों की दासी !

शान्तनु--(**भीष्म से**) कुमार यह क्या रहस्य है ?

भीष्म--रहस्य तो कुछ भी नहीं।

शान्तनु--मंत्री जी, आप ही बताइये !

मंत्री--बताने को क्या है, महाराज ? आपकी दशा मुझसे देखी न गयी और मैंने आपकी व्यथा का रहस्य कुमार को बता दिया। कुमार महादेवी के पिता से मिले और उनकी अनुमति से इन्हें यहाँ ले आये। शीघ्र ही आपके साथ इनका विवाह होगा, महाराज !

शान्तनु--किन्तु वह शर्त...?

भीष्म--साधारण थी। मैंने वचन दे दिया कि मैं सिंहासन पर अपना अधिकार नहीं जताऊँगा।

शान्तनु--ओह...! तुमने राज्य-सुख सहर्ष त्याग दिया ?

भीष्म--सुख-दुःख तो केवल मन की भावना है, महाराज ! आपको स्वस्थ और निरोग देखने का सुख ही मेरे लिये सृष्टि का सबसे बड़ा सुख है।

शान्तनु--(**सत्यवती से**) सुना देवि ! मैंने कहा था न कि मेरा देवव्रत सांसारिक सुख-दुःख से परे है।

मंत्री--महाराज, कुमार ने एक और भीष्म-प्रतिज्ञा की है।

शान्तनु--भीष्म-प्रतिज्ञा ?

मंत्री--हाँ महाराज ! महादेवी के पिता को आशंका थी कि कहीं कुमार के पुत्र सिंहासन के लिए विग्रह न मचायें। इसलिये कुमार ने आजीवन अविवाहित रहकर ब्रह्मचर्य-व्रत का पालन करने की भीष्म-प्रतिज्ञा की है।

शान्तनु--कुमार ! यह तुमने क्या किया ? तुम्हारा वंश....

भीष्म--आपके चरणों के प्रताप से मेरे कर्म ही मेरा नाम स्मरणीय रक्खेंगे। सन्तान का क्या भरोसा ? कपूत हुआ तो वंश डुबा देगा। परन्तु अपने कर्मों पर तो मुझे पूरा अधिकार और भरोसा है।

शान्तनु--शब्दों का जाल मत बुनो, कुमार ! मैं समझ रहा हूँ कि तमने मेरे लिए कितना महान् उत्सर्ग किया है।

भीष्म—उत्सर्ग ? नहीं पिताश्री, वह तो मेरा कर्त्तव्य था।

शान्तनु—मंत्री जी, मेरे पुत्र ने मुझे नया जीवन दिया है। है न ?

मंत्री—अवश्य महाराज ! कुमार की यह भीष्म-प्रतिज्ञा सदैव आदर और गौरव के साथ स्मरण की जायेगी।

शान्तनु—देवि मत्स्यगंधे...!

मंत्री—मत्स्यगंधे नहीं, सत्यवती कहें महाराज !

शान्तनु—सत्यवती ?

मंत्री—हाँ ! कुमार ने महादेवी का नया नामकरण किया है।

शान्तनु—हम प्रसन्न हुए कुमार की सूझ पर।

मंत्री—और हमने कुमार देवव्रत का नाम रक्खा है, भीष्म !

शान्तनु—ठीक ही है। भीष्म-प्रतिज्ञा करने वाला भीष्म ही हो सकता है। (**भीष्म से**) वत्स भीष्म, तुमने मुझे नया जीवन दिया है। मैं तुम पर प्रसन्न होकर तुम्हें इच्छा-मृत्यु का वर देता हूँ।

भीष्म—इच्छा मृत्यु ?

शान्तनु—हाँ भीष्म, इच्छा-मृत्यु ! मृत्यु तुम्हारा वरण तभी कर पायेगी, जब तुम चाहोगे। (**सत्यवती से**) देवि, तुम प्रासाद में आकर प्रसन्न तो हो ?

सत्यवती—जिस नारी को आप जैसा पति, और भीष्म जैसा पुत्र मिले, वह प्रसन्न नहीं होगी ? यह मेरे पूर्व जन्म के पुण्यों का प्रताप ही है, महाराज ! ऋषि पाराशर की अनुकम्पा से मुझे अनंत यौवन का वर मिला है और आपकी कृपा से मुझे जीवन का हर्ष और उल्लास प्राप्त हुआ है। मेरी जैसी सौभाग्यशालिनी नारी इस वसुधा पर दूसरी कौन होगी ?

शान्तनु—हम आश्वस्त हुए। मंत्री जी, राज-पुरोहित से विवाह का शुभ मुहूर्त निकलवा कर मंगल-समारोह की तैयारी की जाये !

मंत्री—जो आज्ञा महाराज !

शान्तनु—दीनों और याचकों के लिए राज-कोष खोल दिया जाये ! नगर में अभूत-पूर्व सज्जा हो ! द्वार-द्वार पर वन्दनवार सजें, मंगल-घट

रक्खे जायें ! किसी गृह में अंधकार न रहे; कोई आँगन सूना न रहे ! मंगल-वाद्यों की स्वर-लहरी धरती-आकाश पर छा जाये !

मंत्री—ऐसा ही होगा, महाराज !

शान्तनु—कुमार भीष्म, तुम देवी सत्यवती के पिता को सादर राजधानी लाने की व्यवस्था करो। उन्हें एक सुसज्जित आवास प्रदान किया जाये !

भीष्म—आदेश का पालन होगा, महाराज !

शान्तनु—मंत्री जी, परिचारिकाओं से कहो, देवी सत्यवती को अन्तःपुर में ले जाकर इन्हें चन्दन-स्नान करायें और फिर इनका ऐसा शृंगार करें जो राज-महिषी के पद और मर्यादा के अनुकूल हो !

मंत्री—जो आज्ञा महाराज !

भीष्म—मुझे भी आज्ञा दें, महाराज !

[मंत्री और भीष्म का प्रस्थान।]

शान्तनु—देवि सत्यवती, हमने तुम्हें बहुत बड़ा मूल्य देकर प्राप्त किया है। कुमार भीष्म ने हमारे लिये अपने जीवन का सुख-भोग उत्सर्ग कर दिया है। अब कुरु-वंश की लाज तुम्हारे हाथ में है। तुम्हारा कोई कार्य ऐसा न हो जो हमारे कुल की मर्यादा के विरुद्ध हो और जिसके लिए हमें अपने चयन तथा निर्णय पर प्रायश्चित्त करना पड़े।

सत्यवती—महाराज, आप निश्चिन्त रहें। धीवर-कन्या होकर भी मैं शिष्ट आचार से अपरिचित नहीं हूँ। महर्षि पाराशर की कृपा से मुझे यथेष्ट ज्ञान प्राप्त हुआ है। मेरा आचरण प्रतापी कुरु-वंश के गौरव को धूमिल नहीं करेगा, वचन देती हूँ।

शान्तनु—हम प्रसन्न हुए महाभागे ! चलो, हम स्वयं तुम्हें अन्तःपुर में ले चलें।

[शान्तनु और सत्यवती का प्रस्थान।]

पटाक्षेप

दूसरा अंक

पहला दृश्य

स्थान--राजमाता सत्यवती का कक्ष।
समय--प्रातःकाल।

[महाराज शान्तनु का देहावसान हो चुका है। राजमाता सत्यवती का बड़ा पुत्र चित्रांगद भी सिंहासनारूढ़ होने के कुछ दिनों बाद ही एक गंधर्व के हाथों वीरगति प्राप्त कर चुका है। अब छोटा पुत्र विचित्रवीर्य हस्तिनापुर के सिंहासन पर आरूढ़ है। राजमाता सत्यवती श्वेत वस्त्र धारण किये हैं। वे एक आसन पर बैठी हैं। भीष्म समीप ही नतमस्तक खड़े हैं।]

सत्यवती--कुमार भीष्म, एक बार फिर सोच लो।

भीष्म--मैंने भली प्रकार सोच कर ही निवेदन किया है, मातुश्री!

सत्यवती--यही तुम्हारा अन्तिम निर्णय है?

भीष्म--हाँ।

सत्यवती--मेरी बात नहीं मानोगे?

भीष्म--आपके आदेश पर प्राणों का होम कर सकता हूँ। परन्तु आपकी यह आज्ञा शिरोधार्य नहीं है। असमर्थता क्षमा करें।

सत्यवती--तुम चाहते हो, कुरु-राज्य छिन्न-भिन्न होकर धूल में मिल जाये?

भीष्म--कुरु-राज्य की ओर आँख उठाने वाले का शिर धड़ पर नहीं रहेगा, माँ! आप चिन्ता क्यों करती हैं?

सत्यवती—चिन्ता क्यों न करूँ ? महाराज ने भी अंतिम सांस तक तुमसे यही कहा कि हस्तिनापुर के सिंहासन पर तुम्हीं बैठना, पर तुम नहीं माने।

भीष्म—मैं प्रतिज्ञा-बद्ध हूँ और भीष्म की प्रतिज्ञा भंग नहीं हो सकती।

सत्यवती—इसी प्रतिज्ञा के कारण तुमने मेरे ज्येष्ठ पुत्र चित्रांगद को सिंहासन पर बिठाया, किन्तु वह कुछ दिन बाद ही गंधर्वों के द्वारा मारा गया।

भीष्म—इसका खेद मुझे जीवन भर रहेगा मातुश्री कि मैं उस समय सुदूर प्रदेश में था और इसलिये अपने प्रिय अनुज की जीवन-रक्षा न कर सका।

सत्यवती—नहीं, तुम्हें दुःखी होने की आवश्यकता नहीं, भीष्म ! इसमें तुम्हारा क्या दोष ? मनुष्य नियत जीवन-अवधि लेकर ही जन्म लेता है। चित्रांगद का जीवन उतना ही था। काल पर किसी का वश नहीं चलता। मुझे भय है कि चित्रांगद के समान ही उसके अनुज विचित्र-वीर्य का भी अंत न हो।

भीष्म—आपकी आशंका व्यर्थ है। जब तक भीष्म के शरीर में रक्त की एक बूँद तक शेष रहेगी, कोई विचित्रवीर्य का बाल भी बाँका नहीं कर सकता।

सत्यवती—विचित्रवीर्य की रक्षा तुम बाहरी शत्रुओं से ही तो कर सकोगे। जो उसके अन्दर शत्रु है.....

भीष्म—मैं समझा नहीं आपका आशय।

सत्यवती—वह दुर्बल और रोगी है। इसीलिए मैं आतंकित हूँ। सिंहासन पर उसी को बैठना चाहिए जिसकी भुजाओं में बल हो, हृदय में साहस हो। निर्बल बाहु राज्य की रक्षा नहीं कर सकते। राजा की दुर्बलता आंतरिक विद्रोहों और षड्यंत्रों को जन्म देती है।

भीष्म—विद्रोहों और षड्यंत्रों का दमन करने के लिए आपका

पुत्र और महाराज विचित्रवीर्य का अग्रज भीष्म जो है। क्या आपको मेरी सामर्थ्य पर विश्वास नहीं ?

सत्यवती——अंधविश्वास है, तभी तो कह रही हूँ कि तुम्हीं राज्य की बागडोर सँभालो।

भीष्म——यह नहीं हो सकता, अम्ब !

सत्यवती——विचित्रवीर्य में राज्य का दुर्वह भार वहन करने की सामर्थ्य नहीं, भीष्म !

भीष्म——आपका संरक्षण और मार्ग-दर्शन अनुज को शक्ति और सामर्थ्य प्रदान करेगा, राजमाता !

सत्यवती——और अग्रज होने के नाते क्या तुम्हारा कोई दायित्व नहीं ?

भीष्म——अवश्य है, और उसका निर्वाह भी करूँगा। मेरा बाहु-बल सिंहासन की रक्षा करेगा।

सत्यवती——(**उठकर टहलती हुई**) तुम मेरी बात समझते क्यों नहीं भीष्म ? राजा का सिंहासन केवल सुख-भोग के लिए ही नहीं होता। वह शक्ति और शौर्य के साथ उत्सर्ग और वात्सल्य का भी प्रतीक है। राजा प्रजा का पिता होता है। वह उस विशाल वट-वृक्ष के समान है जिसकी शीतल और श्रमहारी छाया में क्लान्त-श्रान्त जन विश्राम करते हैं, अपने को सभी आपदाओं और संकटों से मुक्त अनुभव करते हैं। मैं जानती हूँ, विचित्रवीर्य हस्तिनापुर की प्रजा को सुरक्षा और निश्चिन्तता की वह भावना प्रदान नहीं कर सकता जो तुम कर सकते हो। सोचो, क्या यहाँ की प्रजा के प्रति तुम्हारा कोई उत्तरदायित्व नहीं है ?

भीष्म——मातुश्री, मैं आपसे तर्क नहीं कर सकता। केवल इतना कहूँगा कि मैं प्रजा की सेवा सिंहासन से दूर रहकर भी कर सकता हूँ। मैंने लोक-सेवा का व्रत लिया है और मैं अपने व्रत पर अटल हूँ। बोलिये, क्या कभी आपने सुना कि मैंने अपने कर्त्तव्य के प्रति उदासीनता बरती है ?

सत्यवती——नहीं वत्स ! मैं तो सदा तुम्हारी कर्मशीलता की यश-गाथा ही सुनती रही हूँ।

भीष्म—तब आप आशंकित क्यों है ? आप क्यों चाहती हैं कि मैं अपनी प्रतिज्ञा भंग कर सिंहासन पर बैठूँ ?

सत्यवती—तुमने प्रतिज्ञा क्यों की थी ?

[भीष्म मौन रहते हैं।]

सत्यवती—मौन क्यों हो ? उत्तर दो।

भीष्म—पिताश्री की सुख-शान्ति के लिये।

सत्यवती—महाराज सुख-शान्ति भोग कर गोलोकवासी हुए। तुमने मेरे पुत्रों के लिये ही तो राज्याधिकार त्यागा था ? तुमने मेरे पिताश्री को वचन दिया था। अब वे भी इस संसार मे नहीं हैं। अब तुम मुझसे और मेरे पुत्र से ही प्रतिबद्ध हो। बोलो, मैं असत्य तो नही कह रही हूँ ?

भीष्म—आप सत्य ही कह रही है।

सत्यवती—तो मैं तुम्हें आज और इसी क्षण उस प्रतिबद्धता से मुक्त करती हूँ। मेरे पुत्र को नही चाहिए राज-पाट ! अब तो राज-छत्र धारण करोगे ?

भीष्म—नही, अम्ब नही ! शब्दों के जाल में फाँसकर मुझे धर्म-च्युत न करें। मै विनती करता हूँ। मुझे प्रण-भंग के महान् गर्त में न गिरायें !

[भीष्म व्याकुल होकर टहलने लगते हैं। राजमाता सत्यवती उनकी ओर देखती रहती हैं। फिर हताश होकर आसन पर बैठ जाती हैं।]

सत्यवती—व्याकुलता त्यागो, वत्स ! मैं तुम्हें विवश नहीं करूँगी। विचित्रवीर्य को तुम्हारी छत्र-छाया प्राप्त हुई है, यही बहुत है। हाँ, अब हम दूसरी समस्या पर विचार करेंगे।

भीष्म—आदेश दें।

सत्यवती—मैं भविष्य के लिए चिन्तित हूँ।

भीष्म—भविष्य की चिन्ता व्यर्थ है।

सत्यवती—व्यर्थ नहीं, सार्थक है भीष्म ! विचित्रवीर्य के बाद राज्य का अधिकारी कौन होगा ?

भीष्म—उसका पुत्र।

सत्यवती—पुत्र तो तभी उत्पन्न होगा जब उसका विवाह होगा।

भीष्म—क्या तात्पर्य है आपका ? (**मुस्करा कर**) क्या अनुज ने भी अग्रज के चरण-चिन्हों का अनुसरण कर आजीवन अविवाहित रहने का प्रण किया है ?

सत्यवती—ऐसी बात नहीं है।

भीष्म—तब ?

सत्यवती—मुझे चिन्ता इस बात की है कि कोई राजपुत्री विचित्रवीर्य जैसे निस्तेज और निर्बल नरेश का वरण स्वेच्छा से करेगी भी या नहीं।

[**भीष्म उत्तर नहीं देते। चिन्तित होकर टहलने लगते हैं।**]

सत्यवती—(**उठकर**) भीष्म, मैं अहर्निश इसी चिन्ता-ज्वाला से दग्ध होती रहती हूँ।

भीष्म—(**दृढ़ता से**) दग्ध न हो, मातुश्री ! प्रतापी कुरु-वंश के यशस्वी नृपति विचित्रवीर्य का वरण करने के लिए हर राज-पुत्री लालायित होगी।

सत्यवती—यह आत्म-वंचना है, वत्स ! मैं नारी हूँ अतः नारी की भावनायें समझ सकती हूँ। वह ऐश्वर्य और वैभव की ही प्यासी नहीं होती और न उसे अतीत की गौरिमा ही रिझा सकती है। उसे मोहने वाला होता है पौरुष और पराक्रम। विचित्रवीर्य में इन्हीं का अभाव है।

भीष्म—भीष्म के रहते उसका अनुज अविवाहित नहीं रह सकता। आप चिन्तित न हों। आर्यावर्त में राज-पुत्रियों का अभाव नहीं। एक से एक सुन्दर कुमारियों को आपके चरणों पर डाल दूँगा।

सत्यवती—तुम्हारे विक्रम का ही तो भरोसा है, भीष्म ! तुम्हीं को कोई उपाय करना होगा, अन्यथा मेरी भाँति कोई धीवर-कन्या ही तुम्हारी अनुज-वधू बनेगी।

भीष्म—ऐसा कहकर अपना निरादर न करें। धीवर-कन्या होकर भी आप जैसी विदुषी और शीलवती है, वह किसी से छिपा नहीं है। और फिर मनुष्य जन्म से नहीं, कर्म से तुच्छ अथवा महान् बनता है। आदेश दें मातुश्री, किस प्रदेश की राज-पुत्री को आप कुल-वधू बनाना चाहती है?

सत्यवती—काशिराज की पुत्रियों के विषय में कुछ सुना है?

भीष्म—तीन बहनें हैं—अम्बा, अम्बिका और अम्बालिका। तीनों ही विदुषी और रूपवती हैं।

सत्यवती—काशिराज उनके विवाह के लिए स्वयंवर का आयोजन कर रहे हैं।

भीष्म—यह भी मुझे ज्ञात है। मेरी इच्छा भी थी कि विचित्रवीर्य को काशी ले जाऊँ।

सत्यवती—स्वयंवर में?

भीष्म—हाँ।

सत्यवती—उसे ले जाना व्यर्थ होगा। स्वयंवर मे एक से एक प्रतापी, पुरुषार्थी और पराक्रमी नरेश आयेंगे। उनके सामने रोगी विचित्रवीर्य का क्या मूल्य होगा? कोई और उपाय करो।

भीष्म—कोई बात नहीं। मैं अकेला ही जाऊँगा और काशिराज की तीनों राज-पुत्रियों का हरण करके हस्तिनापुर ले आऊँगा। यहीं हम उनके साथ अनुज विचित्रवीर्य का विवाह करेंगे।

सत्यवती—तुम्हारे निष्कलुष चरित्र पर कन्या-हरण का कलंक लग जायेगा, भीष्म!

भीष्म—माता की प्रसन्नता का पावन गंगा-जल उस कलंक की कालिमा को धो देगा। मुझे आज्ञा दें। मैं काशी को प्रस्थान करने की व्यवस्था करूँ।

सत्यवती—भीष्म, वहाँ अनेक नृपति होंगे। तुम अकेले....

भीष्म—केसरी सदा अकेला रहता है। शृगाल-दल उसका कुछ नहीं बिगाड़ सकता।

सत्यवती—अपने साथ चुने हुए योद्धा ले जाना, वत्स !

भीष्म—आप चिन्तित न हों। भगवान् परशुराम का शिष्य हूँ। मेरा कोई अनिष्ट नहीं होगा। आपका आशीष अभेद्य कवच बनकर मेरी रक्षा करेगा।

सत्यवती—जाओ वत्स ! सफल मनोरथ होकर शीघ्र ही लौटो।

[भीष्म राजमाता के चरण छूकर बाहर जाते हैं। मंच पर अंधकार छाने लगता है।]

दूसरा दृश्य

स्थान—वही कक्ष।

समय—कुछ दिन बाद।

[राजमाता सत्यवती आसन पर विराजमान हैं। उनके मुख-मंडल पर हर्ष और सन्तोष के चिन्ह हैं। मंत्री करबद्ध खड़ा है।]

सत्यवती—हाँ मंत्रिवर ! फिर क्या हुआ ?

मंत्री—होता क्या, राजमाता ! जिस प्रकार सूर्य की प्रखर किरणों से अंधकार छँट जाता है, उसी प्रकार गांगेय भीष्म के विक्रम ने नृप-दल को छिन्न-भिन्न कर दिया।

सत्यवती—अच्छा ....!

मंत्री—जी हाँ ! उस समय उनका युद्ध-कौशल देखते ही बनता था। अनेक नृपतियों ने उन्हें चारों ओर से घेर लिया था, किन्तु उनकी बाण-वर्षा ने त्राहि-त्राहि मचा दी।

सत्यवती—मुझे अपने भीष्म के पराक्रम पर गर्व है।

मंत्री—होना ही चाहिए, राजमाता ! महा पराक्रमी शाल्वराज भी गांगेय के सन्मुख हतप्रभ था। उन्होंने पल भर में उसका तेज हर लिया।

सत्यवती—महाबली शाल्वराज भी पराजित हुआ ?

मंत्री—हमारे भीष्म के सामने महाकाल भी नहीं टिक सकता। शाल्वराज तो मनुष्य ही है। स्वयंवर में उपस्थित सभी नरेशों को परास्त करके वे काशिराज की तीनों पुत्रियों को हस्तिनापुर ले आये।

सत्यवती––मेरी मनोकामना पूर्ण हुई। मेरा भीष्म, अपने पराक्रम की कथा अपने मुँह से कभी न कहता। अच्छा हुआ, तुमने सुना दी।

मंत्री––राजमाता ! आप तीनों राज-पुत्रियों को देखकर सन्तुष्ट तो है ?

सत्यवती––तीनों ही रूपवती और विदुषी हैं। अम्बिका और अम्बालिका तो अत्यन्त प्रसन्न भी है....।

मंत्री––प्रसन्न क्यों न हों राजमाता ! कुरु-वंश की राज-वधू बनना बड़े सौभाग्य की बात है।

सत्यवती––(**निःश्वास के साथ**) परन्तु ज्येष्ठ राज-पुत्री अम्बा के चेहरे पर तनिक भी प्रसन्नता नहीं। लगता है, वह इस हरण से क्षुब्ध और रुष्ट है।

मंत्री––समय सबसे कुशल चिकित्सक होता है, राजमाता ! धीरे-धीरे स्वतः सब ठीक हो जायेगा।

[**अम्बा तीव्र गति से कक्ष में प्रवेश करती है। वह रुष्ट है। चेहरा तमतमाया हुआ है। आवेश के कारण स्वर काँप रहा है।**]

अम्बा––कोई मेरे प्रश्न का उत्तर क्यों नहीं देता ?

सत्यवती––(**उठकर**) स्वागत, अम्बा !

मंत्री––राजमाता को प्रणाम करें, देवि !

अम्बा––राजमाता को प्रणाम न करने की अशिष्टता नहीं करूँगी। मैं नहीं चाहती कि राजमाता के मन में यह मिथ्या धारणा बने कि काशि-राज की कन्या साधारण शिष्टाचार भी नहीं जानती। (**सादर झुककर**) राजमाता जी, अम्बा का प्रणाम स्वीकार करें !

सत्यवती––युग-युग जियो ! सदा सौभाग्यवती रहो !

अम्बा––सौभाग्यवती ? राजमाता, मेरे दुर्भाग्य का परिहास न करें !

सत्यवती––परिहास ? दुर्भाग्य ? यह तुम क्या कह रही हो ?

अम्बा––जो कहना है, वह उन भीष्म से कहूँगी जो मुझे हर कर लाये है। आपसे तो बस यही पूछना चाहती हूँ कि इस प्रकार राज-कन्याओं

का हरण करना क्या कुरु-वंश की सनातन रीति है ? क्या हस्तिनापुर के स्वर्गीय नरेश महाराज शान्तनु ने आपका भी हरण किया था ?

मंत्री—(**आवेश से**) देवि ! ऐसे अवांछित शब्द काशिराज की विदुषी कन्या के मुख से शोभा नहीं देते। संसार जानता है कि महाराज ने राजमाता के पिताश्री की सहर्ष सहमति से ही विवाह किया था।

सत्यवती—आवेश की आवश्यकता नहीं, मंत्रिवर ! आप जाकर भीष्म को मेरे पास तुरन्त भेज दें !

मंत्री—जो आज्ञा, राजमाता !

[**मंत्री का प्रस्थान।**]

सत्यवती—अम्बा, लगता है हरण-काण्ड को लेकर तुम बहुत उद्विग्न और क्षुब्ध हो।

अम्बा—मैं क्षत्रिय-बाला हूँ, राजमाता ! और क्षत्रिय-बाला हरण नहीं, वरण स्वीकार करती है।

सत्यवती—मैं तुम्हारी भावनाओं का आदर करती हूँ, बेटी ! किन्तु कुछ ऐसी ही विवशता थी जिसके कारण हमें इस प्रकार हरण का आश्रय लेना पड़ा।

अम्बा—विवशता की ओट में अधर्म को युक्ति-संगत सिद्ध करना व्यर्थ है, राजमाता ! मैं इस प्रकार के थोथे तर्क स्वीकार नहीं कर सकती।

[**भीष्म का प्रवेश।**]

भीष्म—(**सादर**) राजमाता की जय हो ! आपने स्मरण किया है ?

सत्यवती—आओ भीष्म ! कहो, विवाह की व्यवस्था पूरी हो गयी ?

भीष्म—जी हाँ, दो घड़ी बाद ही शुभ मुहूर्त है।

सत्यवती—वत्स, राजकन्या अम्बा अप्रसन्न और रुष्ट है।

भीष्म—(**विस्मय से**) क्यों ? (**अम्बा के निकट जाकर**) भद्रे ! रोष और अप्रसन्नता का कारण जान सकता हूँ ?

अम्बा—(**तीखे स्वर में**) क्या मेरे लिए प्रसन्न और आनन्दित होने का भी कोई कारण है ?

भीष्म——क्यों नही ? राज-कन्याये कुरु-वश की वधुयें बनने का स्वप्न देखती है।

अम्बा——कुरु-वंश अत्यन्त गौरवशाली तथा महान् है, इसीलिये न ?

भीष्म——यह कोई नगण्य कारण नही है, देवि !

अम्बा——यह कारण है नही, था। अतीत के गौरव को आपने अपने अधर्म से कलंकित कर दिया है। उत्तर दीजिये क्या कुरु-कुल-दीपक महाबली भीष्म द्वारा इस प्रकार राज-कन्याओं का हरण, वंश की परम्परा के प्रतिकूल नही है ?

भीष्म——चुरा कर हरण करने और शस्त्र-बल से जीतने मे अन्तर है, भद्रे !

अम्बा——अपने लिए जीतने और रोगी-निर्बल अनुज के लिए जीतने मे भी अन्तर है। बाहुबल से जीतकर आप लाये है। बोलिये, क्या आप मेरा वरण करेंगे ?

भीष्म——मै. . . .? असम्भव !

सत्यवती——भीष्म ने आजीवन ब्रह्मचर्य-व्रत पालन करने का प्रण किया है।

अम्बा——तो क्या हुआ ? प्रण भंग भी किया जा सकता है।

भीष्म——देवि ! भीष्म की प्रतिज्ञा भंग होने के लिए नही है।

अम्बा——आपको अपना वचन बहुत प्रिय है ?

भीष्म——प्राणो से भी अधिक।

अम्बा——यह जानकर हर्ष हुआ। तब तो आप प्रण-भंग को जघन्य पातक मानते होंगे ?

भीष्म——निश्चय ही।

अम्बा——आप साक्षी है राजमाता ! महात्मा भीष्म प्रण-भंग को जघन्य पातक मानना स्वीकार कर चुके हैं।

सत्यवती——तुम कहना क्या चाहती हो, बेटी ?

अम्बा—सुनिये ! जब प्रण-भंग करना जघन्य पातक है, तब क्या आप चाहती हैं कि मैं पातक-पंक से अपने जीवन को कलुषित करूँ ?

सत्यवती—क्या विचित्रवीर्य से विवाह करना पातक होगा ?

अम्बा—हाँ. . . .घोर पातक।

भीष्म—स्पष्ट कहो भद्रे ! तुम्हारा आशय क्या है ?

अम्बा—आपकी तरह मैं भी प्रण कर चुकी हूँ।

भीष्म—आजीवन अविवाहित रहने का ?

अम्बा—नही। पराक्रमी शाल्वराज को वरने का। मैं मन से उन्हें पति मान चुकी हूँ। वे भी मुझे प्यार करते है। स्वयंवर में मैं उन्हीं को वरमाला पहनाती। अब आप ही बतायें, मैं अपना प्रण भंग करके आपके अनुज को पति-रूप में कैसे स्वीकार कर सकती हूँ ? ऐसा करना क्या पातक न होगा ?

सत्यवती—ओह. . .! यह तो महा अनर्थ हुआ।

भीष्म—और अधर्म भी। यदि तुमने काशी में ही अपने प्रण की बात बता दी होती, तो यह अपराध न होता। मैं लज्जित हूँ और तुमसे क्षमा माँगता हूँ।

सत्यवती—पर अब क्या हो सकता है ? बोलो, तुम्हें सादर काशि-राज के पास पहुँचा दिया जाये ?

अम्बा—पिता के आवास से निकल कर वहाँ जाने का प्रश्न ही नही उठता।

भीष्म—तब क्या करोगी, देवि ? कहाँ जाओगी ?

अम्बा—शाल्वराज के पास जाऊँगी। पिता का गृह त्याग कर नारी पति के गृह ही जाती है।

सत्यवती—परन्तु बेटी. . .शाल्वराज तुम्हें. . .मेरा आशय है, वे तुम्हें स्वीकार करेंगे ?

अम्बा—क्यों नहीं ? क्या मैं गंगाजल की तरह पवित्र नही ?

सत्यवती—अपनी पवित्रता का प्रमाण दे सकोगी ? बेटी, तुमने

अभी संसार में देखा ही क्या है ? पुरुष-जाति अत्यन्त सन्देहशील और शंकालु होती है।

अम्बा—मेरे प्रियतम ऐसे नहीं हैं। उन्हें मुझ पर पूरा विश्वास है।

सत्यवती—भगवान् करे, ऐसा ही हो। किन्तु फिर भी, यदि शाल्व-राज तुम्हें स्वीकार न करें तो...तो....

भीष्म—तो तुम हस्तिनापुर आ सकती हो, बहन ! भाई का हृदय-द्वार तुम्हारे लिए सदैव खुला रहेगा। बोलो अम्बा, मुझे अपना भाई मानकर, संकट के समय यहाँ आओगी न ?

अम्बा—(**उत्तेजित होकर**) नहीं ! यदि शाल्वराज ने मुझे स्वीकार नहीं किया तो मैं अपने दुर्भाग्य और विनाश का दोषी आपको ही मानूँगी। निश्चय जानिये, तब मैं आपको क्षमा नही करूँगी। मैं काशिराज की पुत्री ही नहीं, राजर्षि होत्रवाहन की दौहित्री भी हूँ। मैं प्रतिशोध लूँगी प्रतिशोध लूँगी। भीष्म, सावधान किये देती हूँ। मुझे अबला मत समझना। मेरा कोप वज्र बनकर टूटेगा।

भीष्म—(**मदुल स्वर में**) शान्त हो बहन ! भविष्य को किसने देखा है ? हम तुम्हारे मंगलमय जीवन की कामना करते है। फिर भी, यदि विधाता वाम ही हुआ और शाल्वराज ने तुम्हें अस्वीकार कर समस्त नारी-जाति का तिरस्कार ही किया, तो मैं तुम्हारे कोप-वज्र का प्रहार हँसते-हँसते झेलूंगा।

[अम्बा विचित्र दृष्टि से भीष्म की ओर देखती है। भीष्म सिर झका लेते हैं।]

सत्यवती—वत्स भीष्म ! राज-पुत्री अम्बा को शाल्वराज के पास पहुँचाने की व्यवस्था कर दो।

भीष्म—आदेश का पालन होगा, मातुश्री ! (**अम्बा से**) चलो बहन !

[भीष्म और अम्बा का प्रस्थान। राजमाता सत्यवती शिथिल सी आसन पर बैठती हैं। तभी मंच पर धीरे-धीरे अन्धकार छा जाता है।]

तीसरा दृश्य

स्थान——भगवान् परशुराम का आश्रम।

समय——प्रातःकाल।

[**भगवान् परशुराम साधना में लीन हैं। अम्बा का प्रवेश। उसके बाल बिखरे हैं। आते ही वह भगवान् परशुराम के चरणों पर गिरती है।**]

अम्बा——त्राहिमाम् ! त्राहिमाम् !!

परशुराम----(**नेत्र खोलकर**) कौन ?

अम्बा——शरणागता हूँ, भगवन !

परशुराम——शरणागता ?

अम्बा——हाँ, भगवन् ! अपमानित, तिरष्कृत और लाछित होकर आपकी शरण में आयी हूँ। मेरा रोम-रोम व्यथा के दाह से दग्ध हो रहा है। मेरी अन्तर्ज्वाला शान्त करें प्रभु ! एक त्रस्त, दुखियारी की रक्षा करें।

परशुराम——आश्वस्त होकर अपने त्रास का कारण बताओ, देवि ! मैं तुम्हारा दुःख दूर करूँगा।

अम्बा——इसी आशा और विश्वास के साथ ही तो आयी हूँ, प्रभो ! मैं जानती हूँ, जिसका कोई नहीं, उसके आप हैं।

परशुराम——तुम्हारा परिचय ?

अम्बा—कभी काशिराज की ज्येष्ठ पुत्री अम्बा थी, किन्तु अब तो एक मात्र कलंकिनी, परित्यक्ता नारी हूँ।

परशुराम—काशिराज की पुत्री ? राजर्षि होत्रवाहन की दौहित्री ?

अम्बा—हाँ, भगवन् !

परशुराम—राजर्षि हमारे बन्धु है। अतः तुम हमारी भी दौहित्री हुई ! बोलो, किस दुष्ट पातकी ने तुम्हारा अपमान किया है ? मैं उसका शिर अपने वज्र कुठार से काट दूँगा।

अम्बा—अपमान किया है शाल्वराज ने परन्तु उसका मूल कारण है भीष्म।

परशुराम—वह कैसे ?

अम्बा—हम तीन बहने है, प्रभु ! पिताजी ने हमारे लिए स्वयंवर रचाया था। देश-देश के नरेश आये थे। मैंने मन ही मन शाल्वराज को वरने का प्रण कर लिया था। शाल्वराज भी मुझसे प्यार करते थे। परन्तु स्वयंवर पूरा न हो सका। भीष्म हम तीनों बहनों को हरकर हस्तिनापुर ले गये।

परशुराम—भीष्म ने तुम्हारा हरण किया ? आश्चर्य है। वह तो आजीवन ब्रह्मचारी रहने का प्रण कर चुका है।

अम्बा—हरण अपने लिए नहीं, अपने अनुज विचित्रवीर्य के लिए किया था।

परशुराम—ओह...! समझा।

अम्बा—मैंने विचित्रवीर्य के साथ विवाह करना अस्वीकार कर दिया। जब भीष्म को ज्ञात हुआ कि मैं मन से शाल्वराज का वरण कर चुकी हूँ, तो वे बहुत दुःखी हुए। उन्होंने मुझे आदर के साथ शाल्वराज के पास भेज दिया।

परशुराम—भीष्म मेरा शिष्य है। वह अधर्म नहीं कर सकता।

अम्बा—(**रोकर**) परन्तु शाल्वराज ने पुरानी प्रीति भुलाकर मुझे

कलंकिनी कहा, मेरे चरित्र पर लांछन लगाया और भ्रष्टा-पतित कहकर मुझे प्रासाद से निकाल दिया।

परशुराम—शाल्वराज का यह दुःसाहस ! मैं उसे दण्ड दूँगा। मेरा परशु अभी कुन्द नहीं हुआ है।

[**भीष्म का प्रवेश।**]

भीष्म—गुरुदेव, शिष्य का प्रणाम स्वीकार करें !

परशुराम—कौन, भीष्म ! आओ ! (**अम्बा की ओर संकेत करके**) इस कुमारी को पहचानते हो ?

भीष्म—(**अम्बा की ओर ध्यान से देखकर**) राजकुमारी अम्बा ! तुम यहाँ...? इस दीन वेश में ? कुशल तो है ?

परशुराम—कुशल कहाँ, भीष्म ! दुष्ट शाल्वराज ने इसे लाछित और अपमानित करके प्रासाद से निकाल दिया।

भीष्म—क्यों ?

अम्बा—क्योंकि आपने मेरा हरण करके मेरी पवित्रता भंग कर दी है।

भीष्म—यह क्या कह रही हो, देवि ! हरण का दोषी अवश्य हूँ, पर तुम स्वयं जानती हो कि तुम अब भी गंगाजल की भाँति पवित्र हो।

अम्बा—पर शाल्वराज तो नहीं मानते। वह मुझे भ्रष्टा समझते हैं....। तभी तो निरादर किया। पिताजी भी पतिता ही समझेंगे। हा....! अब मैं कहाँ जाऊँ ? क्या करूँ ?

भीष्म—तुम चिन्ता न करो, बहन ! मैं गुरुदेव के चरणों की सौगन्ध लेकर कहता हूँ कि मूढ़ शाल्वराज को बन्दी बनाकर यहीं आश्रम में ले आऊँगा और उसके साथ तुम्हारा विवाह करूँगा।

अम्बा—बलपूर्वक किया गया विवाह जीवन में विष घोल देगा। नहीं, मैं ऐसा नहीं करूँगी। (**परशुराम से**) भगवन्, मेरे कष्टों का कारण यही भीष्म है। यदि यह मेरा हरण न करते तो मुझे इस प्रकार अपमान के विष-घूँट न पीने पड़ते। दण्ड के भागी शाल्वराज नहीं, भीष्म है। मेरा न्याय करें प्रभो, मेरा न्याय करें !

परशुराम––भीष्म ! अम्बा का तर्क असंगत नहीं है। तुम्हीं इसके कष्टों का कारण हो। अपनी भूल का परिष्कार करो।

भीष्म––आदेश दें, गुरुवर ! भीष्म अपना जीवन देकर भी प्रायश्चित्त करने के लिए तत्पर है।

अम्बा––जीवन नहीं, मुझे सौभाग्य चाहिए। आप मुझे अपने चरणों की दासी बनाकर ही कलंक और अपमान से बचा सकते है।

भीष्म––(**चौंक कर**) यह क्या कह रही हो, देवि ?

परशुराम––और कोई मार्ग नहीं है, भीष्म ! तुमने इसके जीवन में जो विष-सिंचन किया है, उसे स्नेह-सुधा से ही दूर कर सकते हो। वत्स, इसे पत्नी-रूप में स्वीकार करो।

भीष्म––गुरुदेव ! ऐसा आदेश न दें। मैं आजीवन अविवाहित रहने के लिए प्रण-बद्ध हूँ।

परशुराम––इस कुमारी का जीवन तुम्हारे प्रण से अधिक मूल्यवान् है।

भीष्म––नहीं, प्रभु ! मैं अपनी प्रतिज्ञा नहीं तोड़ सकता।

परशुराम––यह मेरा, तुम्हारे गुरु का आदेश है। अम्बा को पत्नी बनाकर उसका दुःख दूर करो।

भीष्म––भगवन्, मुझे धर्म-संकट में न डालें। ऐसा आदेश न दें, जिसकी मुझे अवज्ञा करनी पड़े।

परशुराम––तुम्हें गुरु का आदेश मानना होगा। जानते हो, गुरु-द्रोह से बड़ा और कोई पातक नहीं !

भीष्म––प्रण-भंग का पातक भी, छोटा पातक नहीं, प्रभु !

परशुराम––गुरु से तर्क करते तुम्हें लज्जा नहीं आती ?

भीष्म––मैं तो आपका दास हूँ, प्रभो ! निवेदन कर रहा हूँ....।

अम्बा––प्रभो, भीष्म बहुत दंभी हो गये हैं। आज धर्म-संकट की बात कर रहे है, जब कुमारी कन्याओं का बलपूर्वक हरण किया था, तब धर्म कहाँ गया था ? पूछिये इनसे !

परशुराम—बोलो भीष्म ! मैं अन्तिम बार पूछ रहा हूँ ! अम्बा से विवाह करोगे या नही ?

भीष्म—(**विनयपूर्वक**) भगवान् परशुराम का शिष्य अपनी प्रतिज्ञा भंग नही कर सकता, चाहे उसे अपने प्राणो की बलि ही क्यों न देनी पडे ।

परशुराम—(**क्रोध से**) ठीक है, तो प्राण देने के लिए तत्पर हो जा ! तुझे मेरे साथ युद्ध करना होगा !

भीष्म—शिष्य गुरु के साथ युद्ध करे ?

परशुराम—करना होगा । मेरा कुठार तेरे रक्त से अपनी प्यास बुझायेगा ।

भीष्म—मैं नत मस्तक हूँ, प्रभु ! शिर काट लें ।

परशुराम—मुझे कायर समझता है दुष्ट ! निरस्त्र पर प्रहार करूँ ? युद्ध-भूमि मे तेरा शिर काटूँगा । कुरुक्षेत्र की भूमि तेरे रक्त मे सीचूँगा । गुरु-शिष्य का, ब्राह्मण-क्षत्रिय का ऐसा युद्ध होगा जैसा त्रिलोक में कभी नही हुआ । अरे मानी भीष्म, तू कदाचित भूल गया है कि मैं अपने इसी परशु से इक्कीस बार पृथ्वी को क्षत्रियों से विहीन कर चुका हूँ ।

भीष्म—शान्त हो, भगवन् ! आपका पराक्रम मुझे ज्ञात है । गुरु की समता शिष्य कभी नही कर सकता । प्रभो, मैं अपनी पराजय स्वीकार करता हूँ ।

परशुराम—बिना संग्राम के पराजय ? मेरा शिष्य होकर कायरता प्रदर्शित करता है ? धिक्कार है तुझे ! कैसा क्षत्रिय-पुत्र है ?

भीष्म—भार्गव ! मेरे क्षात्र-धर्म को न ललकारें, मुझे अपना शिष्य-धर्म ही निबाहने दें ।

परशुराम—शिष्य-धर्म यही है कि गुरु की आज्ञा का उल्लंघन किया जाये ?

भीष्म—यह गुरु-धर्म भी तो नही है प्रभो कि शिष्य को वचन-भंग करने के लिए बाध्य किया जाये ।

परशुराम—तू मुझे गुरु-धर्म सिखा रहा है? पातकी, तेरा काल निकट है।

भीष्म—पिताश्री ने मुझे इच्छा-मृत्यु का वर दिया है।

परशुराम—तो मैं भी अमर हूँ। हमारा संग्राम अनन्त काल तक चलता रहेगा।

भीष्म—नहीं प्रभु! आप भगवान् हैं और मैं मनुष्य। आपकी समता कैसे कर सकूँगा?

परशुराम—भीष्म! तुम युद्ध से बच नहीं सकते। युद्ध तो होना ही है। अपने दिव्य चक्षुओं से मैं युद्ध का परिणाम भी देख रहा हूँ। अतः भीरुता त्याग कर संग्राम के लिए तत्पर हो जाओ। कल कुरुक्षेत्र में हमारा युद्ध होगा।

भीष्म—जैसी प्रभु की इच्छा! (**चरण छूकर**) कल कुरुक्षेत्र में आपकी प्रतीक्षा करूँगा। अब आज्ञा दें!

परशुराम—विजयी भव!

[**भीष्म का प्रस्थान।**]

अम्बा—भगवन्! आपने भीष्म को विजय का आशीर्वाद दिया?

परशुराम—गुरु, शिष्य की विजय-कामना ही करता है! राजनन्दिनी, तुम आश्रम में विश्राम करो! देखो, कल युद्ध में क्या होता है!

[**मंच का प्रकाश धीमा होकर बुझ जाता है। पल भर बाद जब पुनः प्रकाश होता है तब मंच पर केवल अम्बा दिखाई देती है। परशुराम का वीर-वेश में प्रवेश।**]

अम्बा—(**उत्सुकता से**) भीष्म का वध कर आये, भगवन्?

परशुराम—(**थके स्वर में**) नहीं। गांगेय भीष्म को इच्छा-मृत्यु का वर प्राप्त है। उसकी मृत्यु तब तक नहीं हो सकती, जब तक वह स्वयं न चाहे।

अम्बा—उसे आपने जीवन-दान दे दिया? कोई बात नहीं! पर उसका मान-मर्दन तो कर दिया होगा?

परशुराम—अम्बे, मैं. . .मैं उसे परास्त भी नहीं कर सका।

अम्बा—(**विस्मय से**) आप यह क्या कह रहे हैं, प्रभो ? गुरु शिष्य को पराजित नहीं कर पाया !

परशुराम—हाँ ! गुरु शिष्य को पराजित नहीं कर पाया ; वरन् स्वयं परास्त होकर आया है।

अम्बा—भीष्म ने आपको परास्त कर दिया ? मुझे विश्वास नहीं होता, भगवन् ! संसार में ऐसा कौन वीर है जो आपके तेज को सह सके, आपके वज्र-परशु का प्रहार झेल सके ?

परशुराम—भीष्म ने असम्भव को सम्भव कर दिया है। मैं बहुत लज्जित हूँ कि भीष्म को दण्ड न देकर शरणागता का त्रास दूर करने में असमर्थ रहा। मुझे क्षमा करो।

अम्बा—आपने शिष्य को विजय का आशीष दिया था। मैं जानती हूँ, आपको शरणागता अम्बा से अधिक प्रिय भीष्म है। इसीलिए आप स्वेच्छा से पराजित हुए है।

परशुराम—ऐसा न कहो।

अम्बा—क्यों न कहूँ ? यह सत्य है। आपने इसीलिये भीष्म को पराजित नहीं किया जिससे उनका प्रण भंग न हो। यदि वे परास्त हो जाते तो उन्हें मेरा वरण करना पड़ता। प्रभो ! आपने मुझ दुखियारी के साथ छल किया है।

परशुराम—यह असत्य है।

अम्बा—(**उत्तेजित होकर**) सभी पुरुष एक से होते हैं। आपने शिष्य के साथ पक्षपात किया है। मैं तो बड़ी आशा लेकर आयी थी।

परशुराम—स्थिर चित्त होकर मेरी बात सुनो।

अम्बा—मैं कुछ नहीं सुनूँगी। मेरे अन्तर में प्रतिशोध की ज्वाला धधक रही है। जब तक भीष्म का विनाश नहीं होता, मुझे शान्ति नहीं मिलेगी।

परशुराम—प्रतिशोध की भावना उचित नहीं।

अम्बा—क्रोध ने मुझे अन्धा कर दिया है। मैं...कठिन तपस्या से भगवान् शंकर को प्रसन्न करूंगी।

परशुराम—भगवान् शंकर से भीष्म का वध कराओगी ?

अम्बा—नहीं, मैं उनसे वरदान मागूँगी कि मैं भीष्म के वध का साधन बन सकूँ।

परशुराम—यह इस जन्म में तो सम्भव नही है।

अम्बा—अगले जन्म में सही। भीष्म का वध करने के लिए यदि मुझे सौ जन्म भी लेने पड़ें, तो लूँगी। मैं जा रही हूँ।

[अम्बा का तीव्र गति से प्रस्थान। भगवान् परशुराम पहले तो नेपथ्य की ओर देखते रहते हैं फिर धीरे-धीरे उनकी दृष्टि शून्य में स्थिर हो जाती है मानो वे भावी को पढ़ने की चेष्टा कर रहे हों। मंच पर प्रकाश कम होने लगता है। धीरे-धीरे पूर्ण अन्धकार छा जाता है।]

चौथा दृश्य

स्थान––राजमाता सत्यवती का कक्ष।
समय––कुछ वर्ष बाद।

[राजमाता सत्यवती म्लान-मना आसन पर बैठी हैं। उनके मुख-मंडल पर उदासी की घटा छायी है। यद्यपि महर्षि पाराशार द्वारा दिये गये अनन्त यौवन के वरदान के कारण वे अब भी युवती जैसी ही दीख रही हैं, परन्तु निराशा और दुख के राहु ने चन्द्र-मुख को जैसे ग्रस लिया है। भीष्म खड़े हैं।]

भीष्म––मातुश्री, दिन-रात दुःख के सागर में डूबी रहने से क्या होगा?

सत्यवती––तब क्या करूँ, भीष्म ? न जाने किस कुघडी में मेरा जन्म हुआ था जो यह सब देखना पड़ रहा है।

भीष्म––धीरज रक्खें !

सत्यवती––कैसे धीरज रक्खूँ ? पति गये, मैं धैर्य रक्खे रही ; पुत्र चित्रांगद गया, तब भी नहीं रोई और अब विचित्रवीर्य को भी राजयक्ष्मा का रोग खा गया।

भीष्म––मैं भी आपका ही पुत्र हूँ।

सत्यवती––जानती हूँ। तुमने सदा मुझे सगी माता से भी अधिक आदर दिया है। पर वत्स, मेरी छाती यह सोच-सोच कर फटी जाती है कि मेरी दोनों बहुयें निपूती हैं ! हा···हन्त ! उन्हें इस युवावस्था में ही वैधव्य भोगना पड़ा !

[राजमाता अधीर होकर रोने लगती हैं।]

भीष्म——भवितव्य होकर ही रहता है, मातुश्री ! काल पर किसका वश है। अनुज विचित्रवीर्य के उपचार में हमने कोई कसर नहीं उठा रक्खी । दूर-दूर से वैद्यराज बुलाये, फिर भी · · · ! हमारा दुर्भाग्य है कि · · · ·

सत्यवती——अभागिनी तो मैं हूँ भीष्म कि कुरु-वंश के लिए विषैली नागिन बन बैठी।

भीष्म——ऐसा न कहें, मातुश्री !

सत्यवती——मेरे ही कारण तुमने जीवन के सुख-भोग त्याग कर ब्रह्मचर्य-व्रत का संकल्प लिया ; मैं ही पति का काल बन बैठी ! भीष्म, महर्षि का वरदान मेरे लिए घातक अभिशाप सिद्ध हुआ है।

भीष्म——विधाता की इच्छा के विरुद्ध कुछ नहीं होता। जो हुआ, वही होना था। आप वृथा अपने को दोष न दें।

सत्यवती——दोष न दूँ ? मेरी आखों के सामने युवा वधुयें वैधव्य का दुःख भोग रही हैं, हस्तिनापुर का सिंहासन रिक्त पड़ा है, फिर भी अपने को दोष न दूँ ?

भीष्म——सिंहासन रिक्त है परन्तु राज-काज मंत्रि-परिषद् की सहायता से मैं देख ही रहा हूँ। आप चिन्ता क्यों करती हैं ?

सत्यवती——पर इस प्रकार कब तक राज-कार्य चल सकता है ? क्या राज-सिंहासन सदैव रिक्त ही रहेगा ?

[भीष्म उत्तर नहीं देते। सिर झुकाकर गंभीर मुद्रा में टहलने लगते हैं।]

सत्यवती——(**उठकर भीष्म के समीप जाकर**) वत्स भीष्म, मेरी विनती स्वीकार करोगे ?

भीष्म——आदेश दें, मातुश्री !

सत्यवती——हस्तिनापुर के सिंहासन पर बैठ कर शासन-सूत्र सँभालो। अब तो मेरी कोई सन्तान नहीं रही। अतः वचन-भंग करने का प्रश्न ही नहीं उठता।

भीष्म—नहीं, मातुश्री, नही, ऐसी आज्ञा न दें ! मैं सिंहासन पर नहीं बैठ सकता।

सत्यवती—अभी तुमने कहा था कि मैं तुम्हें अपना पुत्र समझूँ।

भीष्म—आपका पुत्र तो हूँ ही।

सत्यवती—तब सिंहासन पर बैठने में संकोच क्यों ?

भीष्म—आप महान् विदुषी है। आपसे तर्क मे जीतना सम्भव नहीं। इसलिए तर्क करने की मूढ़ता नहीं करूँगा। बस, यही समझ लीजिये कि यह आपके पुत्र का हठ है। मैं हस्तिनापुर का शासक नही सेवक ही होना चाहता हूँ।

सत्यवती—अच्छा, सिंहासन की समस्या अभी रहने दो। यह बताओ, कुरु-वंश क्या यही समाप्त हो जायेगा ? मेरे दोनों पुत्र तो परलोकवासी हुए। अब वंश को आगे बढ़ाकर पितृ-ऋण से तुम्ही को मुक्त होना है।

भीष्म—आपका आशय है, मैं विवाह करूँ ?

सत्यवती—हाँ ! वंश-रक्षा के लिए तुम्हें विवाह करना ही होगा।

भीष्म—यह असम्भव है। आप तो जानती है कि अपनी प्रतिज्ञा के कारण ही मुझे अपने पूज्य गुरु भगवान् परशुराम से युद्ध करना पड़ा। गुरु ने शिष्य का सम्मान रखने के लिए पराजय स्वीकार कर ली, यह दूसरी बात है। यदि मैं गुरु की आज्ञा मानकर, अपनी प्रतिज्ञा भंग कर देता और काशिराज की पुत्री अम्बा से विवाह कर लेता, तो युद्ध टल जाता··· किन्तु·····

सत्यवती—तब की बात छोड़ो, भीष्म ! तब तुम्हारा अनुज था पितृ-ऋण चुकाने के लिए। अब तुम्हारे अतिरिक्त और कौन है ?

भीष्म—भीष्म-प्रतिज्ञा भंग नहीं होगी, मातुश्री ! और अब तो यह प्रतिज्ञा अम्बा के रक्त से सन चुकी है। आपको ज्ञात ही है कि भगवान् शंकर को कठिन तपस्या से प्रसन्न करके अम्बा ने मेरे वध का साधन बनने का वर माँगा और फिर चिता में जलकर भस्म हो गयी।

सत्यवती—अम्बा का प्रसंग बार-बार क्यों उठा रहे हो, भीष्म ?

स्पष्ट कहो, कुरु-वंश को आगे चलाने के लिए तुम अपना प्रण-भंग करके विवाह करोगे या नहीं ?

भीष्म—(**दृढ़ता से**) नहीं।

सत्यवती—(**हताश होकर अपने आसन पर बैठती हुई**) तब वंश कैसे चलेगा ?

भीष्म—कोई और उपाय सोचें, मातुश्री !

सत्यवती—अब एक ही मार्ग रह गया है।

भीष्म—कौन-सा ?

सत्यवती—तुमने महर्षि द्वैपायन का नाम सुना है ?

भीष्म—क्यों नहीं ? महर्षि वेदव्यास का ही दूसरा नाम द्वैपायन है।

सत्यवती—चारों वेदों के अलग-अलग विभाग करने के कारण ही द्वैपायन का वेदव्यास नाम पड़ा है।

भीष्म—जानता हूँ। परन्तु प्रस्तुत प्रसंग मे भगवान् वेदव्यास का उल्लेख समझ मे नही आया।

सत्यवती—अभी आ जायेगा। सुनो ! तुम पर विश्वास करके आज मैं एक रहस्य खोल रही हूँ। व्यास मेरा ही पुत्र है।

भीष्म—(**चौंक कर विस्मय से**) महर्षि व्यास आपके पुत्र ! मेरे भाई !!

सत्यवती—हाँ ! जब मैं कुमारी थी तब एक बार मैंने महर्षि पाराशर को अपनी नौका से यमुना पार कराई थी। महर्षि ने प्रसन्न होकर मुझे सुवास दी, अनन्त यौवन का वर दिया और. . .और एक पुत्र दिया। यमुना के एक द्वीप में जन्म होने के कारण ही उस पुत्र का नाम द्वैपायन पड़ा।

भीष्म—मेरा अहोभाग्य जो भगवान् वेदव्यास मेरे भ्राता है। क्या वे इस संकट में हमारी सहायता करेंगे ?

सत्यवती—अवश्य। जननी होने के नाते उस पर मेरा पूरा अधिकार

हैं। तुम व्यास को अविलम्ब यहाँ ले आओ। उसकी अनुकम्पा से मेरी पुत्र-वधुओं को पुत्र-रत्न प्राप्त होंगे और कुरु-वंश विनष्ट होने से बच जायेगा।

भीष्म—जो आज्ञा !

[भीष्म का प्रस्थान।]

पटाक्षेप

तीसरा अंक

पहला दृश्य

स्थान—हस्तिनापुर के राज-प्रासाद में भीष्म का कक्ष।
समय—दिन का तीसरा प्रहर।

[**भीष्म चिन्ताकुल मुद्रा में टहल रहे हैं।**]

भीष्म—(**निःश्वास के साथ**) ज्ञात होता है, कुरु-वंश का पुरातन गौरव, पराभव की ओर उन्मुख होने वाला है। न जाने कौन से कुग्रह हैं जो अपनी वक्र दृष्टि से इसी ओर घूर रहे हैं। भगवान् वेदव्यास की अनुकम्पा से वंश-बेलि बढ़ी। धृतराष्ट्र जैसे महाबली, पांडु जैसे धनुर्धर और विदुर जैसे महात्मा ने कुरु-वंश में जन्म लिया। परन्तु यह बुरे ग्रहों की वक्र-दृष्टि ही तो थी कि जन्म से ही धृतराष्ट्र अन्धा और पाँडु रोगी था। ज्ञान और बुद्धि का सिन्धु है विदुर! पर वह ठहरा दासी-पुत्र और वैरागी। उसे राज-काज से प्रयोजन ही नहीं। माता की आज्ञा से पांडु को हस्तिनापुर का सिंहासन दिया। तीनों भ्राताओं का विवाह किया। धृतराष्ट्र का विवाह गांधार-नरेश की पुत्री गांधारी से किया। पतिव्रता और सती गांधारी ने पति को अंधा पाकर स्वयं भी आँखों पर पट्टी बाँध ली! पांडु का विवाह कुंती और माद्री से किया तथा विदुर का विदुषी पारशवी से। पांडु ने दिग्विजय की। लगा, जैसे मेरा कर्त्तव्य पूरा हुआ। पर नहीं, अभी तो बहुत कुछ शेष था। पांडु अपनी दोनों पत्नियों के साथ वन को गया। धृतराष्ट्र का राज्याभिषेक हुआ। और...और...शीघ्र ही.....

[सत्यवती का प्रवेश।]

सत्यवती——वत्स भीष्म, मैं तुमसे आज्ञा लेने आयी हूँ।

भीष्म——**(चौंक कर)** ओह···आप ! मुझसे आज्ञा लेंगी ? मुझे लज्जित न करें, मातुश्री ! आदेश दें।

सत्यवती——सदा तुम्हें आदेश ही देती रही हूँ और तुमने मेरी हर आज्ञा का हँसते-हँसते पालन किया है। आज स्थिति दूसरी है।

भीष्म——क्या चाहती हैं आप ?

सत्यवती——मैं बहुत दुःखी हूँ, भीष्म !

भीष्म——दुःख का कारण ?

सत्यवती——मेरा अपना पातक !

भीष्म——ऐसा न कहें, मातुश्री ! आप और पातक ?

सत्यवती——पातक नहीं तो क्या कहूँ ? कुरु-वंश की पुत्रवधू बनकर सोचा था कि मेरे पूर्व जन्म के पुण्य उदित हुए हैं। पर अब तो लगता है, जैसे मैंने पिशाचिनी बनकर वंश के सुख-सौभाग्य को निगल लिया है, नागिन बनकर उसे डस लिया है।

भीष्म——यह आपकी निरर्थक आत्म-ग्लानि है।

सत्यवती——निरर्थक ? नहीं भीष्म, नहीं ! मेरी ग्लानि न निरर्थक है और न मिथ्या। मेरे दुर्भाग्य की काली छाया वंश पर मँडरा रही है। देखते क्यों नहीं ? पति गये, दो पुत्र गये और अब प्रपौत्र पाडु भी गया। माद्री उसके साथ सती हो गयी। यह सब क्या है ? मैं...मैं अनन्त यौवन का अभिशाप लिए अभी जीवित हूँ और मेरी आँखों के सामने मेरे वंश के दीप बुझते जा रहे हैं।

[सत्यवती का कंठ अवरुद्ध हो जाता है।]

भीष्म——दुःखी न हों, मातुश्री ! मैं भी दुःख से कातर होकर महर्षि व्यास के पास गया था। उनके प्रवचन ने मेरी आँखें खोल दीं।

सत्यवती——तुम व्यास के पास गये थे ? क्या कहा मेरे पुत्र ने ?

भीष्म——यही कहा कि भवितव्य होकर ही रहता है। उसे कोई

टाल नहीं सकता। इसके लिए दुःखी होने की कोई आवश्यकता नहीं। कर्ता तो कोई और है। हम तो बस उस इच्छित कर्म के निमित्त मात्र हैं। पांडु का आखेट को जाना, उसके बाण से ऋषि की हत्या, ऋषि का शाप, पांडु की मृत्यु, माद्री का सती होना, यह सब पूर्व निश्चित कार्य थे। फिर शोक और दुःख कैसा ?

सत्यवती——मेरा पुत्र ज्ञानी और महात्मा है। पर मैं तो साधारण नारी हूँ भीष्म ! जो हुआ और हो रहा है, उसके लिए मैं अपने को ही दोषी पाती हूँ। इसीलिये मैंने निश्चय किया है कि अम्बालिका और अम्बिका के साथ वन में जाकर तपस्या करूँगी।

भीष्म——मातुश्री !

सत्यवती——मेरा निश्चय अटल है, भीष्म ! (**किंचित हँस कर**) भीष्म की ही माँ हूँ न ! तुम्ही कुल के ज्येष्ठ पुरुष हो। इसलिए तुमसे वन-गमन की आज्ञा लेने आयी हूं।

भीष्म——उससे क्या होगा ?

सत्यवती——मेरी अमंगल छाया दूर हो जायेगी, वंश पर संकट नहीं आयेगा। तुम कदाचित भूल गये हो कि जब दुर्योधन का जन्म हुआ था तब कैसे अपशकुन हुये थे ?

भीष्म——भूला नहीं हूँ, विदुर ने कहा भी था कि इस पुत्र से वंश की हानि होगी अतः इसे त्यागना ही उचित है।

सत्यवती——परन्तु पुत्र-मोह के कारण धृतराष्ट्र ने विदुर की बात नहीं मानी। और अब कलह के चिन्ह प्रकट होने लगे है। पांडु-पुत्रों के साथ धृतराष्ट्र के पुत्रों की पटती नहीं। नित्य कोई न कोई विग्रह होता रहता है। मुझसे यह सब देखा नहीं जाता।

भीष्म——विग्रह के लक्षण तो मैं भी देख रहा हूँ, मातुश्री ! परन्तु आपके वन-गमन से क्या विग्रह दूर हो जायेगा ?

सत्यवती——कदाचित हो जाये। और फिर मैं अब राज-प्रासाद में रहकर सुख-भोग करूँ, यह उचित भी नहीं लगता। एक सती गांधारी

है जिसने पति के कारण अपनी आँखों पर पट्टी बाँध ली है और एक मैं हूँ जो····। नहीं भीष्म, मुझे रोको मत।

भीष्म—नही रोकूँगा ! आपकी इच्छा मेरे लिए आदेश है। कल प्रातःकाल रथ प्रस्तुत रहेगा।

सत्यवती—तुम्हारा कल्याण हो वत्स !

भीष्म—और कोई आदेश ?

सत्यवती—वंश के हित का ध्यान रखना। कुरु-कुल के गौरव और उसकी प्रतिष्ठा की रक्षा का दायित्व अब तुम्ही पर है। पाडव तो वीर और गुणी है। पर दुर्योधन, दुःशासन आदि कौरवों की बुद्धि भ्रष्ट है। तुम उनका मार्ग-दर्शन करना !

भीष्म—आपकी आज्ञा का पालन होगा।

सत्यवती—राज-पुत्रो की उचित शिक्षा-दीक्षा का प्रबन्ध करके, उनमें राजोचित गुणो का विकास करना !

भीष्म—ऐसा ही होगा।

सत्यवती—एक वचन और चाहती हूँ।

भीष्म—वह क्या ?

सत्यवती—पाडव तो देव-पुत्र है। उनकी सहायता देवता करेंगे। परन्तु कौरवों की रक्षा का भार मैं तुम्हें सौंपती हूँ। वचन दो कि आजीवन कौरवों के हित की रक्षा करोगे, उनकी सहायता करोगे !

भीष्म—वचन देता हूँ, मातुश्री !

सत्यवती—अब मैं आश्वस्त होकर वन जा सकती हूँ। चलो, दोनों पुत्र-वधुओं को भी चलकर आज्ञा और आशीष दे दो !

भीष्म—चलें, मातुश्री !

[दोनों का प्रस्थान। मंच पर अँधेरा छा जाता है।]

दूसरा दृश्य

स्थान—वही कक्ष।

समय—प्रातःकाल।

[भीष्म और विदुर वार्तालाप कर रहे हैं।]

भीष्म—राज-पुत्रों का अस्त्र-शस्त्र अभ्यास चल रहा है न?

विदुर—हाँ, तात! कृपाचार्य उचित ही शिक्षा दे रहे हैं।

भीष्म—हूँ...! एक दिन अर्जुन का अभ्यास मैंने देखा था। वह महान् धनुर्धर बन सकता है। दुर्योधन और भीम में गदा-संचालन की अद्भुत क्षमता है।

विदुर—कदाचित इसीलिए दोनों में द्वेष भी है।

भीष्म—द्वेष? स्वस्थ प्रतिस्पर्धा तो प्रगति की प्रेरक है, परन्तु ईर्ष्या-द्वेष उचित नहीं। लगता है ईर्ष्या-वश ही दुर्योधन ने भीम को विष खिला दिया था।

विदुर—जी हाँ! नागराज वासुकि की कृपा से भीम बच गया, अन्यथा····! तात, मैंने पहले ही कहा था कि यही दुर्योधन हमारे कुल का नाश करेगा। महाराज ने मेरी नहीं सुनी। देखिये, क्या-क्या दुष्कर्म करता है दुर्योधन!

[दुर्योधन और अर्जुन का प्रवेश।]

अर्जुन—पितामह! अर्जुन प्रणाम करता है।

दुर्योधन—दुर्योधन भी!

अर्जुन––(**विदुर से**) तात, प्रणाम स्वीकार करें !

विदुर––यशस्वी हो !

दुर्योधन––मुझे भी तो आशीष दीजिये !

विदुर––(**हँस कर**) भगवान् तुम्हें सद्बुद्धि दे !

दुर्योधन––क्या मुझमे दुर्बुद्धि है ?

भीष्म––अच्छा अच्छा ! हाँ, यह कहो अपना अभ्यास छोड़कर कैसे आये तुम लोग ?

अर्जुन––हमने एक चमत्कार देखा, पितामह !

दुर्योधन––और हम भाग आये।

अर्जुन––हम कन्दुक-क्रीडा में मग्न थे। कन्दुक एक सूखे कुँए में गिर गया।

दुर्योधन––हमने उसे निकालने की बहुत चेष्टा की। पर निकाल न पाये।

अर्जुन––तभी वहाँ एक विप्रदेव आये।

दुर्योधन––हमारे निष्फल प्रयास देखकर वे हँसे और उन्होंने कहा––कैसे क्षत्रिय-पुत्र हो। फिर पल भर में कन्दुक निकाल दिया।

अर्जुन––जानते है, कैसे निकाला ?

दुर्योधन––बताइये पितामह ! कैसे निकाला ?

भीष्म––(**हँस कर**) अरे भाई, मुझे क्या पता ? मैं तो वहाँ था नही। तुम्हीं बताओ।

अर्जुन––विप्रदेव ने मुट्ठी भर सीकें लीं। एक सीक बाण पर चढ़ाकर शर की भाँति छोड़ी। कन्दुक सीक से बिंध गया।

दुर्योधन––फिर दूसरी सीक से पहली सीक को बेधा और इस तरह धीरे-धीरे सीकें ऊपर आ गयी।

अर्जुन––और तब हमने सीक पकड़ कर कन्दुक निकाल लिया।

भीष्म––(**आश्चर्य से**) अद्भुत ! कौन हैं वह विप्रदेव ? तुमने परिचय पूछा ?

अर्जुन——पूछा तो था। उन्होंने बताया नहीं।

दुर्योधन——कहा, महात्मा भीष्म को जाकर बताओ। वे जान लेंगे। इसीलिए हम भाग कर आये हैं।

भीष्म——अवश्य ही द्रोणाचार्य है। ऐसी धनुर्विद्या उन्हीं को आती है। परन्तु द्रोणाचार्य यहाँ हस्तिनापुर में कैसे आये? विदुर! लगता है, राज-पुत्रों को मेरे मन के अनुसार आचार्य मिल गया। (**अर्जुन से**) अर्जुन, जाकर विप्र-देवता को तुरन्त आदरपूर्वक ले आओ!

दुर्योधन——मै भी जाता हूँ।

[दोनों का प्रस्थान।]

विदुर——द्रोण तो महर्षि भरद्वाज के पुत्र और अपने कृपाचार्य के बहनोई है?

भीष्म——हाँ, महर्षि अग्निवेश के आश्रम में रहकर उन्होंने धनुर्वेद और अस्त्र-विद्या की शिक्षा पायी है। भगवान् परशुराम उनके गुरु है। इस प्रकार हम दोनों गुरु-भाई हुए।

विदुर——यदि द्रोणाचार्य यहाँ रह कर राज-पुत्रों को धनुर्वेद की शिक्षा देने के लिए सहमत हो जायें तो अति उत्तम हो।

[अर्जुन और दुर्योधन के साथ द्रोणाचार्य का प्रवेश]

द्रोण——महात्मा भीष्म, अभिवादन स्वीकार करें!

भीष्म——(**आगे बढ़कर**) आचार्य द्रोण, स्वागत है!

[दोनों परस्पर गले मिलते हैं।]

भीष्म——आपके आगमन से हस्तिनापुर पवित्र हुआ, आचार्य! हम इस कृपा के लिए आभारी हैं!

द्रोण——ऐसा कहकर लज्जित न करें। यह दरिद्र ब्राह्मण स्वयं दूसरों को कृपा का आकांक्षी है।

विदुर——यह आपकी विनम्रता है।

द्रोण——आप महात्मा विदुर हैं न?

विदुर——(हँस कर) महात्मा तो नहीं, पर विदुर अवश्य हूँ।

द्रोण—यह आपकी विनम्रता है।

[भीष्म हँसते हैं।]

द्रोण—मैं वास्तव में दीन और दरिद्र हूँ। मेरे पास इतना भी साधन नहीं कि पुत्र अश्वत्थामा को दूध दे सकूँ। पत्नी कृपी उसे जल में आटा घोल कर पिलाती थी। एक दिन यह भेद भी खुल गया। पुत्र बहुत दुःखी हुआ। पत्नी के आग्रह पर मै सहायता के लिए अपने गुरु-भाई राजा द्रुपद के यहाँ गया। परन्तु उन्होंने मैत्री-भाव भुलाकर मुझे अपमानित करके भगा दिया।

अर्जुन—द्रुपद का यह दुःसाहस ! गुरु-भाई का अपमान किया ?

द्रोण—हाँ, वत्स ! अपमान की ज्वाला से दग्ध होकर मैं परिवार-सहित हस्तिनापुर आया हूँ। मुझे द्रुपद से प्रतिशोध लेना है।

[क्रोध और आवेश के कारण द्रोण का चेहरा तमतमाने लगता है। नेत्र अंगार से दहकने लगते हैं।]

विदुर—शान्त हों, आचार्य !

भीष्म—हस्तिनापुर में आपका स्वागत है ! यहाँ आपको कोई कष्ट नही होगा। राज्य का कोष आपके लिए खुला है।

द्रोण—ब्राह्मण को कोष नहीं चाहिए। महर्षि अग्निवेश और भगवान् परशुराम ने मुझे धनुर्वेद की शिक्षा दी है। मेरे पास सिद्धायुध और दिव्यास्त्र हैं। मुझे ऐसे शिष्य चाहिए जो अभिमानी द्रुपद को परास्त कर मेरी गुरु-दक्षिणा चुका सकें।

अर्जुन—आचार्य, मैं गुरु-दक्षिणा चुकाऊँगा।

दुर्योधन—मैं भी प्रस्तुत हूँ।

भीष्म—मेरा भी अनुरोध है, आचार्य ! आप राज-पुत्रों को अपना शिष्य बनायें।

द्रोण—मुझे स्वीकार है। महात्मा भीष्म, एक आप हैं जो संकट में पड़े गुरु-भाई के लिए राज-कोष खोलने को तत्पर हैं और एक वह नीच द्रुपद है जिसने अपना वचन भूलकर मुझे प्रताड़ित किया।

भीष्म––भूल जाइये उस अप्रिय प्रसंग को। अर्जुन, आचार्य को सादर ले जाओ! मंत्री से कहना, इनके परिवार के लिए प्रत्येक सुविधा की व्यवस्था की जाये!

अर्जुन––जो आज्ञा, पितामह! (**द्रोण से**) चलिये, आचार्य!

द्रोण––चलो, वत्स।

[अर्जुन और द्रोण का प्रस्थान। पीछे-पीछे दुर्योधन भी जाता है।]

विदुर––लीजिये, तात! आपकी इच्छा पूरी हुई। आचार्य ने राजपुत्रों को अस्त्र-शस्त्र-विद्या सिखाना स्वीकार कर लिया।

भीष्म––हाँ विदुर! मेरे दायित्व का एक भाग पूर्ण हुआ। अच्छा गुरु मिलना बड़े सौभाग्य की बात है। मुझे विश्वास है कि पांडव और कौरव दोनों ही अपने को योग्य शिष्य प्रमाणित करेंगे।

विदुर––भगवान् करे ऐसा ही हो! चलिये तात, महाराज धृतराष्ट्र और राजरानी गाधारी को भी यह शुभ सूचना दे दें।

भीष्म––चलो।

[दोनों का प्रस्थान। मंच का प्रकाश बुझ जाता है।]

तीसरा दृश्य

स्थान—हस्तिनापुर का राज-सभागार।

समय—प्रातःकाल।

[महाराज धृतराष्ट्र सिंहासन पर बैठे हैं। उनके दाहिनी ओर भीष्म पितामह आसन पर विराजमान हैं और बायीं ओर विदुर। समीप ही द्रोणाचार्य बैठे हैं।]

धृतराष्ट्र—विदुर, क्या यह सत्य है कि द्रौपदी हमारी कुल-वधूबनी है।

विदुर—हाँ महाराज ! द्रौपदी ने हमारे ही कुल-दीपक को वरा है।

धृतराष्ट्र—तब विलम्ब किस बात का? दुर्योधन से कहो, वह द्रौपदी को लेकर मेरे पास आये ! (**दुःख से**) देख तो नहीं सकता, पर उसका मधुर स्वर सुन तो सकता हूँ।

विदुर—महाराज, मैंने यह तो नही कहा कि द्रौपदी ने दुर्योधन को वरा है।

धृतराष्ट्र—फिर किसे वरा है, दुःशासन को?

विदुर—नही ! अर्जुन को।

धृतराष्ट्र—(**चौंक कर**) अर्जुन को ! क्या कहते हो विदुर? पांडव तो लाक्षा-गृह में जलकर भस्म हो गये थे।

विदुर—नही, महाराज ! पांडव जीवित है।

धृतराष्ट्र—जीवित हैं? (**भीष्म से**) तात ! यह क्या रहस्य है?

भीष्म—रहस्य कुछ नहीं ! दुर्योधन ने मंत्री पुरोचन की सहायता से वारणावत में लाक्षा-गृह का निर्माण पांडवों को जीवित जलाने के लिए

ही कराया है, इसका ज्ञान विदुर को होगया था। विदुर ने मुझसे परामर्श किया और तब हमने विशेष दूत द्वारा पाडवों को सावधान कर दिया था। इसीलिए वे सकुशल लाक्षा-गृह से निकल गये थे।

धृतराष्ट्र––अच्छा किया तात ! हम एक भयंकर पातक से बच गये। दुर्योधन पांडवों को वारणावत ऐसे घृणित और जघन्य उद्देश्य से भेज रहा है, इसका आभास मुझे रंचमात्र न था। उनके भस्म होने का दुःसमाचार सुनकर मुझे बहुत दुःख हुआ था।

विदुर––महाराज, देव-कृपा से पाडव विप्र-वेश धर कर सकुशल भ्रमण करते रहे और उसी वेश में स्वयंवर में पहुंच गये। जिस लक्ष्य को मद्रराज शल्य, दुर्योधन, शिशुपाल और जरासंध जैसे महाबली बेध न सके, उसे अर्जुन ने हँसते-हँसते वेध दिया।

धृतराष्ट्र––पाडु-पुत्र अर्जुन निश्चय ही हमारे कुल का दीपक है।

[दुर्योधन और कर्ण का क्रुद्ध मुद्रा में प्रवेश।]

दुर्योधन––अर्जुन कुल-दीपक नहीं, कुल-कलंक है। महाराज ! पाडव हमारे शत्रु है। आप शत्रुओं की प्रशंसा करें यह उचित नहीं।

भीष्म––दुर्योधन, पाडव तुम्हारे शत्रु नहीं, भाई है।

दुर्योधन––पर हमारे प्रति उनका व्यवहार शत्रुवत् ही है। उनकी दृष्टि हस्तिनापुर के सिंहासन पर है।

भीष्म––सिंहासन पर क्या उनका अधिकार नहीं ?

दुर्योधन––नहीं। आप एक बार पिताश्री का अधिकार छीनकर पाडु को सिंहासन दे चुके है। वह सर्वथा अनुचित था। अब हम यह अन्याय नहीं होने देंगे।

भीष्म––यह तुम नहीं, सूत-पुत्र बोल रहा है, दुर्योधन !

कर्ण––मुझे दोष क्यों देते है, पितामह ? कुमार सुयोधन ने मुझे अंग देश का राज्य देकर अपना मित्र और बन्धु बना लिया है। मैं इन्हें वही परामर्श दूंगा जो इनके हित में होगा।

विदुर—तुम्हारा क्या परामर्श है, तनिक हम भी तो सुनें।

कर्ण—पांडवों का पांचालों से सम्बन्ध होना हमारे लिए अहितकर है। पांडवों की शक्ति बढ गई है। इसके पूर्व कि वे राज्य प्राप्त करने के लिए कोई प्रयास करें, हमें सम्मुख युद्ध में उनका नाश कर देना चाहिए।

भीष्म—पांडवों का नाश तुम करोगे ? तुम भी तो गये थे स्वयंवर में। लक्ष्य भेद करके वर लेते द्रौपदी को !

कर्ण—वर तो लेता पितामह, परन्तु मूढ़ा द्रौपदी ने मुझे लक्ष्य-वेध करने ही नहीं दिया। बोली—मैं सूत-पुत्र को नही वरूँगी। कुल और वंश के नाम पर बार-बार मेरा निरादर हो रहा है।

भीष्म—और तुम प्रतिशोध की ज्वाला शान्त करने के लिए दुर्योधन को मोहरा बना रहे हो ! वसुसेन, पांडव और कौरव भाई-भाई है। अपना झगड़ा स्वयं निबटा लेंगे। तुम बीच में क्यों बोलते हो ?

दुर्योधन—अंगराज मेरे अंतरंग सखा हैं। उन्हें आप इस प्रकार प्रताड़ित नहीं कर सकते, पितामह !

विदुर—अरे मूढ़, तेरी तो मति-भ्रष्ट हुई है।

दुर्योधन—तात, यह राजनीति है, धर्म-नीति नहीं। आप न बोलें, वही ठीक है। (**धृतराष्ट्र से**) महाराज, हमें आदेश दें कि हम अभी चतुरंगिणी लेकर पांचाल पर आक्रमण कर दे ! पांडव अभी वहीं हैं।

धृतराष्ट्र—वत्स सुयोधन, तात भीष्म, आचार्य द्रोण और महात्मा विदुर का मत जाने बिना मैं आक्रमण की अनुमति नहीं दे सकता।

कर्ण—महाराज, परामर्श उनसे लेना चाहिए जो निःस्वार्थ होकर उचित परामर्श दें।

भीष्म—हम स्वार्थी हैं ?

कर्ण—निष्पक्ष भी नहीं हैं। आप लोग जो परामर्श देंगे, हम जानते हैं। चलो कुमार सुयोधन, हम पांडवों के नाश का कोई अन्य उपाय करेंगे।

[कर्ण और दुर्योधन का प्रस्थान।]

धृतराष्ट्र—तात ! आप हमारा मार्ग-दर्शन करें। पांडव जीवित हैं, यह जानकर हमें अत्यन्त हर्ष हुआ है। बोलिये, हमें क्या करना चाहिये।

भीष्म—सूत-पुत्र भाइयों में विग्रह करना चाहता है। यदि गृह-युद्ध हुआ तो कुरु-वंश का नाश निश्चित है।

विदुर—हमें पांडवों को स्नेहपूर्वक हस्तिनापुर बुलाना चाहिये।

धृतराष्ट्र—आचार्य, आपका क्या विचार है ?

द्रोण—महात्मा भीष्म का कथन सत्य है, महाराज ! गृह-युद्ध को टालना ही श्रेयस्कर है।

भीष्म—पांडवों को दुर्योधन की मूढ़ता के कारण अनेक कष्ट भोगने पड़े हैं। इसलिए उनके मन में कौरवों के प्रति अविश्वास और उपेक्षा की भावना होना स्वाभाविक है। उनको यहाँ आदर पूर्वक बुलाकर आधा राज्य दे दिया जाये, तो स्थिति सुधर सकती है।

धृतराष्ट्र—ऐसा ही होगा, तात ! पर उन्हें बुलाने के लिए किसको भेजा जाये ?

द्रोण—महात्मा विदुर के प्रति पांडवों के मन मे आदर-भाव है। इन्हीं को भेजिये, महाराज !

भीष्म—आचार्य का परामर्श उचित ही है।

धृतराष्ट्र—ठीक है। विदुर, तुम तत्काल पांचाल के लिए प्रस्थान करो ! पांडवों के लिए बहुमूल्य उपहार लेते जाना ! उन्हें हमारा आशीष देना और शीघ्र से शीघ्र उनको यहाँ ले आना ! हम उन्हें आधा राज्य देकर लाक्षा-गृह के कलंक को धोने का प्रयास करेंगे।

भीष्म—इसी में वंश का कल्याण है। पांडवों की राजधानी होगी इन्द्रप्रस्थ। कौरव और पांडव प्रेमपूर्वक रहें, यही हमारी कामना है। चलें आचार्य ! आओ विदुर !

[भीष्म, द्रोण और विदुर का प्रस्थान। मंच पर अन्धकार छा जाता है।]

चौथा दृश्य

स्थान––विराट नगर के बाहर कौरव-शिविर।

समय––रात्रि।

[दिन के युद्ध में कौरव सेना अर्जुन के हाथों परास्त हो चुकी है। दुर्योधन और कर्ण में पराजय की खीझ है। द्रोणाचार्य और भीष्म निर्विकार भाव से बैठे हैं।]

दुर्योधन––आश्चर्य है कि पितामह, द्रोणाचार्य, कृपाचार्य और अश्वत्थामा जैसे महावीरों के होते हुए भी हम विराट की सेना से पराजित हो गये और कुमार उत्तर गायें छुड़ाकर ले गया।

भीष्म––तुमने महावीरों की गणना में अपने परमसखा वसुसेन को क्यों छोड़ दिया, दुर्योधन ?

कर्ण––मुझे उत्तेजित न करें, पितामह ! मैं मानता हूँ कि मैं गउओं की रक्षा न कर सका, परन्तु आप लोग भी तो थे ?

द्रोण––हमने युद्ध में कोई ढिलाई नहीं की।

दुर्योधन––ढिलाई तो थी ही, आचार्य ! आपका शिष्य-प्रेम जो जाग गया था। अब यह बात सिद्ध हो गयी है कि उत्तर का सारथी और कोई नहीं, अर्जुन ही था।

भीष्म––जानता हूँ। इसीलिए तो उसने अपना प्रथम बाण मेरे चरणों पर अर्पित किया था।

कर्ण––और आपने उसे विजय का आशीष दे दिया। बन्धु सुयोधन, हमारी पराजय सुनियोजित थी। आचार्य और पितामह ने आधे मन से युद्ध किया था और आधे मन से किया गया युद्ध विजय नही, पराजय ही लाता है।

भीष्म––सावधान वसुसेन ! मिथ्या लांछन न लगा। हमने पूरी तत्परता और निष्ठा से युद्ध किया था।

द्रोण––इस प्रकार का आक्षेप मुझ पर भी किया गया था जब मै युद्ध-भूमि में अर्जुन की प्रशंसा कर रहा था। तुम लोग धर्म-युद्ध का प्रारम्भिक नियम भी नही जानते। सच्चे वीर शत्रुओं की भी प्रशंसा करते है।

दुर्योधन––यही तर्क अश्वत्थामा ने दिया था। हूँ...! यह भी कोई बात है? आप अन्न कौरवों का खाते है और प्रशंसा पाडवों की करते है।

भीष्म––मूढ़ दुर्योधन, पराजय ने तेरा विवेक भी नष्ट कर दिया है। तू भूल गया है कि गुरु-जनो से किस प्रकार बात करनी चाहिए।

कर्ण––जब गुरुजन ही अपना आदर्श और कर्त्तव्य भूल जायें, तब शिष्य क्या करें!

भीष्म––अरे सूतपुत्र ! तूने ही दुर्योधन की मति भ्रष्ट की है। तेरे ही कारण वह अधर्म के कलुषित पथ की ओर अग्रसर हुआ है। धृतराष्ट्र को समझाकर हमने पांडवो को आधा राज्य दिलाया, परन्तु तुझसे उनकी समृद्धि देखी न गयी।

कर्ण––पितामह ! आप मेरा अपमान कर रहे है।

भीष्म––अच्छा, अब सूत-पुत्र को मान-अपमान का भी ध्यान रहने लगा !

दुर्योधन––पितामह, अंगराज को लांछित न करें। जो कुछ किया, मैंने किया है और उसके लिए मुझे न तो ग्लानि है और न लज्जा। हाँ, दुःख अवश्य है कि आप लोगों के कारण मेरी योजनायें असफल होती रही।

भीष्म––सुना आचार्य ! दुर्योधन क्या कह रहा है? इसकी योजनायें

हम लोगों के कारण असफल हुई ! अरे मूढ़, तूने द्यूत-क्रीड़ा में कपटी शकुनि की सहायता से धर्मात्मा युधिष्ठिर को छला, भरी सभा में कुल-वधू द्रौपदी का अपमान किया, पांडवों का राज-पाट छीन कर उन्हें बारह वर्ष तक वनवास और एक वर्ष का अज्ञातवास करने के लिए बाध्य किया ! फिर भी तू कहता है कि तेरी योजना सफल नहीं हुई। और क्या चाहता है तू ?

दुर्योधन—द्यूत-क्रीड़ा में यदि हम हार जाते तो हम भी वनवास और अज्ञातवास करते।

कर्ण—तर्क क्यों कर रहे हो, बन्धु ? पितामह और आचार्य पांडवों की प्रीति में अन्धे हो रहे हैं। इन्हें उनके अवगुण गुण और हमारे गुण अवगुण दिखाई पड़ते है। मैंने तुमसे पहले ही कहा था कि इन्हें हस्तिनापुर में ही छोड़ दो। पर तुम नहीं माने। मैं कहता हूँ, इन्हीं के कारण विराट नगर के युद्ध में हमें पराजय का मुख देखना पड़ा है।

द्रोण—वसुसेन, तुम्हारा दुःसाहस सीमा का उल्लंघन कर रहा है।

भीष्म—द्वैत वन में तो हम नहीं गये थे। तुम्हीं थे दुर्योधन के साथ। जब गंधर्व राज ने दुर्योधन को बन्दी बनाया तो छुड़ाया क्यों नहीं ? भय-भीत होकर भागे क्यों ?

कर्ण—वह मेरी रण-नीति थी। आप नहीं समझ सकते।

द्रोण—रण-नीति भी अब हम तुमसे सीखेंगे।

भीष्म—(**दुर्योधन से**) तुम गये थे पांडवों का नाश करने, परन्तु उन्हीं पांडवों की कृपा से तुम्हें मुक्ति मिली। बोलो, यदि अर्जुन तुम्हें न छुड़ाता तो क्या होता ? गंधर्व-राज के कारागार में आजीवन सड़ते रहते। और तुम पांडवों के उपकारों को भुला कर उन्हें वैरी मानते हो। क्या होगया है तुम्हारी बुद्धि को ? तुमने कुरु-वंश में जन्म लिया है। तुम राज-पुत्र हो। अपनी बुद्धि से सोचो। यदि अपनी बुद्धि इस सूतपुत्र के हाथ गिरवी रक्खे रहे, तो तुम्हारा नाश निश्चित है।

कर्ण—(**व्यंग्य से**) अच्छा ! पितामह अब भविष्यवाणी भी करने लगे।

भीष्म——तेरे यह व्यंग्य-वाण एक दिन तुझे ही आहत करेंगे। इस समय बढ़-बढ़कर बातें कर रहा है, युद्ध में अर्जुन के सामने तेरा बल-विक्रम कहाँ लुप्त होगया था? भूल गया, पृथा-पुत्र के बाणों ने तुझे मूछित कर दिया था।

कर्ण——एक मैं ही क्या, सभी मूच्छित होगये थे। उसका सम्मोहन-वाण आपने जान कर ही नहीं काटा था।

दुर्योधन——और जब वह गउयें ले जा रहा था, तब भी आप मौन रहे। यह पक्षपात नही तो क्या है?

भीष्म——यह पक्षपात है? अरे मूर्ख, यह क्यों भूल जाता है कि जब सब लोग मूच्छित पड़े थे, तब अर्जुन ने कोई निर्दयता का कार्य नहीं किया? वह चाहता तो हम सब को बन्दी बना सकता था। कौरव-सेना को पराजित करके उसने अपना पराक्रम सिद्ध कर दिया है। अब भी चेतो, दुर्योधन! पांडवों की ओर मित्रता का हाथ बढ़ाकर उन्हें फिर बन्धु बना लो।

द्रोण——भीष्म ठीक कह रहे है, सुयोधन! बन्धुओं का वैमनस्य कुल-नाश का ही कारण होता है।

कर्ण——सुना बन्धु, पितामह और आचार्य चाहते है कि हम पंगु पांडवों को आधा राज्य दे दे!

भीष्म——वह तो देना ही पड़ेगा। पांडव बारह वर्ष का बनवास भोग कर एक वर्ष का अज्ञातवास भी कर चुके है।

दुर्योधन——यह असत्य है। अभी अज्ञातवास की अवधि पूरी नहीं हुई.....

कर्ण——और अर्जुन प्रकट हो गया है। इसलिए पांडवों को फिर बारह वर्ष का बनवास भोगना होगा।

दुर्योधन——द्यूत-क्रीड़ा की यही शर्त थी, पितामह!

भीष्म——व्यर्थ की बकवास न करो, दुर्योधन! मैंने भली प्रकार गणना करके देख लिया है। अज्ञातवास की अवधि पूरी हो गयी है।

दुर्योधन——आपकी गणना अशुद्ध भी हो सकती है।

द्रोण——नहीं सुयोधन ! महात्मा भीष्म की गणना शत प्रतिशत शुद्ध है।

कर्ण——हुआ करे ! बन्धु सुयोधन के लिए मैंने दिग्विजय क्या इसी हेतु की थी कि बल-विक्रम से अर्जित राज्य का आधा भाग भिखारी पांडवों को दे दिया जाये ?

दुर्योधन——तुम ठीक कहते हो, अंगराज ! हम अपने निश्चय पर अटल हैं। पांडव यदि चाहें तो युद्ध करके राज्य लेने की चेष्टा करें।

भीष्म——अभी युद्ध से मन भरा नहीं ? बार-बार पराजित होकर भी दर्पोक्तियाँ करते लज्जा नहीं आती ?

दुर्योधन——लज्जा किस बात की ? युद्ध में जय-पराजय तो लगी ही रहती है। और फिर हमारी पराजय का कारण हमारी दुर्बलता अथवा अक्षमता नहीं है।

भीष्म——फिर क्या है ?

कर्ण——मुझसे सुनें, पितामह ! हमारी पराजय का मूल कारण है आप लोगों की शिथिलता। यदि आप लोग सच्चे मन से युद्ध करें तो हमारी विजय निश्चित है।

भीष्म——विजय का दुःस्वप्न देखने वाले सूत-पुत्र ! लगता है, तू बन्धु-विग्रह करा कर ही रहेगा। ठीक है दुर्योधन, जो तेरे जी में आये सो कर ! पर याद रख कि अधर्म की नाव कभी चल नहीं सकती, विजय सदा धर्म की ही होती है।

कर्ण——यदि आप हमें अधर्मी और पांडवों को धर्मात्मा समझते हैं तो उन्हीं के पास चले जाइये। हम रोकेंगे नहीं।

भीष्म——आज क्या, मैं अधर्मियों को छोड़कर कभी का चला जाता। पर क्या करूँ ? विवश हूँ। माँ को वचन दे चुका हूँ। इसीलिए रुका हूँ। (**निःश्वास के साथ**) जब तक जीवन है, कौरवों की रक्षा तो करनी ही है।

अच्छा, अब विश्राम करो। प्रातः होते ही हमें हस्तिनापुर के लिए प्रस्थान करना है।

[कर्ण, दुर्योधन और द्रोण का प्रस्थान। भीष्म व्याकुल होकर टहलने लगते हैं।]

पटाक्षेप

चौथा अंक

पहला दृश्य

स्थान––कौरव-सभा।
समय––प्रात काल।

[सभा में धृतराष्ट्र, भीष्म, विदुर, द्रोण, दुर्योधन और कर्ण अपने-अपने आसनों पर बैठे हैं। मध्य में श्री कृष्ण खड़े हैं।]

कृष्ण––पूज्य पितामह, महात्मा विदुर, आचार्य द्रोण और महाराज धृतराष्ट्र ! मै, कृष्ण, आज कौरव-सभा में पाडवों का दूत बनकर आया हूँ।

भीष्म––यदुराज, आपका स्वागत है !

दुर्योधन––दूत-कर्म कब से करने लगे, कृष्ण ?

कृष्ण––सनातन काल से दूत-कर्म ही तो कर रहा हूँ। धर्म, सत्य और न्याय का दूत बनकर प्रत्येक युग में विचरण किया है।

दुर्योधन––आत्म-श्लाघा के लिए हमारी सभा में स्थान नही है। आने का प्रयोजन कहें।

भीष्म––वत्स दुर्योधन, जनार्दन के आने का ध्येय स्पष्ट है। वे शान्ति और सद्भावना का संदेश लाये हैं।

कृष्ण––हाँ, पितामह ! मैं शान्ति और प्रेम का दूत बनकर आया हूँ। पांडवों के साथ बहुत अन्याय हुआ है। बालपन से ही वे कौरवों के द्वारा प्रताड़ित होते रहे हैं। पराक्रमी पांडु के वीर पुत्र राज्य-सुख से वंचित होकर बारह वर्ष का बनवास भोग चुके हैं। एक वर्ष का अज्ञातवास भी

पूरा हो गया है। इस प्रकार द्यूत-क्रीड़ा की पराजय के सभी प्रतिबन्ध समाप्त हुए । अब उन्हें उनका राज्य मिल जाना चाहिए ।

दुर्योधन—पांडव तो बड़े धर्मशील और पुण्यात्मा हैं। फिर उन्हें राज्य का मोह क्यों ?

कर्ण—उन्हें तो त्यागी और वैरागी बनकर बन में ही रहना चाहिए। यदुराज, आप तो उनके शुभचिन्तक और सखा हैं। उन्हें मोह-लोभ और मद से दूर रहने का उपदेश क्यों नहीं देते ?

भीष्म—कर्ण ! तुम्हें अपनी मर्यादा नहीं भूलनी चाहिए।

कृष्ण—पितामह, अंगराज शब्दों के अद्भुत धनी हैं। इन्हें व्यंग्य-वाण चलाने दीजिये। मुझ पर उनका कोई प्रभाव नहीं होगा।

[कृष्ण हँसते हैं। कर्ण लज्जित होकर सिर झुका लेता है।]

भीष्म—दुर्योधन ! हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि दूत का निरादर हमारे राज-धर्म को कलंकित करेगा। दूत के साथ हमारा व्यवहार विनम्र, मधुर और शिष्ट होना चाहिये। अपने मित्र अंगराज को यह शिष्टाचार समझा दो।

धृतराष्ट्र—उस प्रसंग को छोड़ें पितामह ! हाँ, तो कृष्ण ! हमें बताओ, पांडव क्या चाहते हैं ?

कृष्ण—आधा राज्य !

दुर्योधन—यह असम्भव है।

विदुर—वत्स सुयोधन, पांडवों का भी राज्य पर समान अधिकार है। नीति और न्याय के अनुसार·····

दुर्योधन—(**बीच में ही**) नीति और न्याय की दुहाई कायर देते हैं, तात !

द्रोण—पांडव तुम्हारे भाई हैं।

दुर्योधन—यह हमारा दुर्भाग्य है। उन्होंने अपनी विलासिता और कायरता से कुरु-वंश की पवित्र प्रतिष्ठा को कलंकित किया है।

भीष्म—अरे मूढ़ ! पांडवों को विलासी और कायर कहते तुझे लज्जा

नहीं आती ? भूल गया, कितनी बार उन्होंने तुझे पराजित किया है ? अर्जुन के गांडीव की टंकार तुझे याद नहीं ? भीम की गदा भूल गया ?

धृतराष्ट्र—तात ! दुर्योधन विवेकहीन है। उसे यह आरोप नहीं लगाना चाहिए था। उसका अपराध क्षमा करें।

भीष्म—धृतराष्ट्र ! तुम्हीं ने इसे बिगाड़ा है। देख लेना, यह पामर कुरु-वंश का नाश करके ही रहेगा।

द्रोण—शान्त हों, महात्मन् ! हमें यदुराज को उत्तर देना है।

दुर्योधन—उत्तर हम दे चुके हैं, आचार्य ! पांडवों को आधा राज्य नहीं मिलेगा।

कृष्ण—तो पाँच ग्राम ही दे दो जहाँ पाँचों भाई सुख-चैन से रह तो सकें।

दुर्योधन—पाँच ग्राम ?

कृष्ण—हाँ, पांडव पाँच ग्राम पाकर ही संतोष कर लेंगे।

दुर्योधन—बड़े संतोषी हैं ! बड़े त्यागी है ! सुनो कृष्ण, मैं पाँच ग्राम तो दूर, सुई की नोक बराबर भी भूमि नहीं दूँगा।

विदुर—यह हठ उचित नहीं, दुर्योधन ! पांडव बहुत कष्ट उठा चुके हैं।

दुर्योधन—आपको दया आ रही है ? आनी ही चाहिए ! पर मैं दया करके यदि इस प्रकार पृथ्वी दान करने लगूँ, तो शीघ्र ही कंगाल हो जाऊँगा।

भीष्म—पांडव दान नहीं, अपना अधिकार माँग रहे हैं।

दुर्योधन—पितामह ! अधिकार माँगे नहीं जाते, बल-विक्रम से प्राप्त किये जाते हैं।

भीष्म—पांडव यदि चाहें तो अपने पौरुष-पराक्रम से समस्त पृथ्वी का राज्य प्राप्त कर सकते हैं, पर वे तुम्हारी तरह राज्य-लोलुप और लोभी नहीं।

दुर्योधन—यदि पांडव ऐसे ही बलवान् हैं तो युद्ध करके राज्य ले लें।

के लिए तत्पर हैं।

कृष्ण—पांडव व्यर्थ का नर-संहार और रक्त-पात बचाना चाहते हैं। इसलिए संधि-वार्ता के लिए मैं आया हूँ।

दुर्योधन—संधि-वार्ता समान पक्षों में होती है, कृष्ण ! कौरव-सम्राट् और याचक पांडवों की क्या समानता ?

कृष्ण—तो मैं ऐसे ही लौट जाऊँ ? पांडवों को पाँच ग्राम भी नहीं मिलेंगे ?

दुर्योधन—नहीं ! हमारा निर्णय सुन लिया ?

कृष्ण—पूज्य गुरुजन, दुर्योधन का निर्णय आप लोगों ने भी सुना। क्या यही न्याय है ? हम तो कौरव-सभा में न्याय की आशा लेकर आये थे।

भीष्म—दुर्योधन ! अपने निर्णय पर फिर विचार करो। भाई-भाई का युद्ध उचित नहीं। पांडवों के पक्षधरों की भी कमी नहीं। यदि संग्राम हुआ तो विनाश का तांडव होगा। चारों ओर त्राहि-त्राहि मच जायेगी। रक्त की नदियाँ बहेंगी और ····

दुर्योधन—(**बीच में ही**) हम क्षत्रिय-पुत्र हैं, पितामह ! युद्ध से नहीं डरते।

कृष्ण—ठीक है। 'युद्धं देहि' का घोष करने वाले दुर्योधन, तुम्हें युद्ध ही मिलेगा। पितामह भीष्म, महात्मा विदुर, आचार्य द्रोण और महाराज धृतराष्ट्र साक्षी रहें ! इस भयंकर महाभारत के दोषी पांडव नहीं, कौरव ही हैं। अब संधि-वार्ता समाप्त होती है। शीघ्र ही अर्जुन का देवदत्त और मेरा पांचजन्य वज्र-घोष करेगा। अर्जुन का गांडीव और भीम की गदा···

कर्ण—केशव, गांडीव और गदा का नाम लेकर आप हमें व्यर्थ ही भयभीत करना चाहते हैं।

कृष्ण—पांडवों का पराक्रम अभी देखा नहीं !

कर्ण—देखा है ! जो पांडव द्रौपदी की मान-रक्षा न कर सके, उनका बल-विक्रम मुझे ज्ञात है।

भीष्म—अंगराज कर्ण, तुम्हीं विग्रह का मूल हो। जब तक तुम्हारा मान मर्दन नहीं होगा तब तक युद्ध की ज्वाला शान्त नहीं होगी।

कृष्ण—कर्ण ने अभी अर्जुन के सिद्धायुध नहीं झेले हैं। इसीलिए दंभ है। दुर्योधन ! अब भी समय है। चेत जाओ। महानाश को निमंत्रण न दो।

दुर्योधन—क्षत्रियों का जीवन ही महानाश के अंक में पलता है, यदुराज ! हमें कायर न समझो। युद्ध-भूमि में ही हमारी भेंट होगी। अभी पितामह भीष्म का बल-वीर्य थका नहीं है, आचार्य द्रोण का शर-चाप सोया नहीं है महाबली अंगराज का बल-विक्रम शिथिल नहीं हुआ है। हम अभी, इसी क्षण युद्ध की घोषणा करते हैं। तुम दूत हो। इसलिए अवध्य हो। प्राण तो नहीं लूँगा, परन्तु बन्दी बना कर कारागार में अवश्य डालूँगा।

कृष्ण—(**हँस कर**) तुम मुझे बन्दी बनाओगे ? बनाओ !

दुर्योधन—कर्ण, बन्दी बना लो।

[कृष्ण हँसते हैं। कर्ण तलवार खींच कर उनकी ओर झपटता है। कृष्ण अन्तर्धान हो जाते हैं।]

धृतराष्ट्र—अरे नराधम ! यह क्या करता है ? कृष्ण को बन्दी बनाने का विचार छोड़ दे।

विदुर—कृष्ण अन्तर्धान होगये, तात ! कर्ण और दुर्योधन ग्लानि और लज्जा का अनुभव कर रहे हैं।

भीष्म—बना लिया कृष्ण को बन्दी ? अरे दुरात्मा दुर्योधन, तूने पुरुषोत्तम का अपमान किया है !

कर्ण—पुरुषोत्तम ! पितामह, आप भूलते हैं। कृष्ण पुरुषोत्तम नहीं, केवल पुरुष हैं।

विदुर—तुम्हारी आँखों पर आवरण पड़ा है।

द्रोण—तुम अज्ञान के अंधकार मे डूबे हो। कृष्ण जनार्दन हैं। वत्स दुर्योधन ! पांडवों से युद्ध का विचार त्याग दो।

भीष्म—अधर्म-नीति त्यागो दुर्योधन ! पांडवों को पाँच ग्राम दे दो। इतने विशाल साम्राज्य से यदि पाँच ग्राम चले जायेंगे तो·····

धृतराष्ट्र—तात ठीक कह रहे हैं दुर्योधन ! युद्ध तभी करना चाहिए जब अनिवार्य हो।

दुर्योधन—इस समय युद्ध अनिवार्य ही है, पिताश्री ! एक वन में दो सिंह नहीं रह सकते।

भीष्म—तब कौरवों का नाश निश्चित है। जहाँ धर्म है, वहाँ कृष्ण हैं और जहाँ कृष्ण है, वहीं विजय है।

कर्ण—कृष्ण, कृष्ण, कृष्ण ! कृष्ण न हुए भगवान् हो गये !

दुर्योधन—दृष्टि-सम्मोहन का चमत्कार देख कर आप लोग हतप्रभ हो गये हैं। आप लोगों की मति भ्रष्ट हो गयी है।

भीष्म—मति भ्रष्ट तो तू है जो वन्दनीयों का निरादर करता है। अरे मूढ़, पांडवों से रार ठान कर तूने अपने पैरों पर कुठाराघात किया है। इस सूत-पुत्र की संगति ने तेरा विवेक हर लिया है। तू अपना कुल-धर्म, शील और आचार सब कुछ भूल बैठा है।

कर्ण—'सूत-पुत्र', 'सूत-पुत्र' कह कर मेरा तिरस्कार न करें, पितामह ! मनुष्य जन्म से नही, कर्मों से महान् होता है। सूत-पुत्र होकर भी मैं उन वन्दनीयों से अच्छा हूँ जो कौरवों की छत्र-छाया में रहकर उनका नमक खाकर भी पांडवों का गुण-गान करते है।

भीष्म—वाचाल युवक, तेरा दर्प और अहंकार निश्चय ही महानाश का कारण बनेगा।

दुर्योधन—पितामह, रुष्ट न हों ! हमारा निर्णय अटल है। युद्ध तो होगा ही।

विदुर—किन्तु वत्स, युद्ध का आग्रह तो तुम्हारा ही है। चाहो तो शान्ति रह सकती है।

द्रोण—महात्मा विदुर के कथन में सार है, दुर्योधन !

भीष्म—सोचो दुर्योधन ! तुम्हारे हठ का परिणाम क्या होगा ? असंख्य माताओं के अंक सूने हो जायेंगे, कुल-वधुओं की माँग का सौभाग्य-सिन्दूर पुँछ जायेगा, बहनों के भाई छिन जायेंगे। अनेक योद्धा विकलांग

होकर जीवन-भार ढोते रहेंगे। युद्ध की विभीषिकाओं का प्रलयंकार कोप मानवता को नष्ट कर देगा। भावी पीढ़ियाँ तुम्हीं को कोसेंगी। इसलिये, हठ छोड़ दो। शान्ति के साथ रहो और पांडवों को भी रहने दो।

दुर्योधन—वसुधा बहुत बड़ी है, पितामह ! पांडव कहीं भी रह सकते हैं। हस्तिनापुर के राज्य पर ही उनकी कुदृष्टि क्यों है ?

भीष्म—कुदृष्टि ? नहीं दुर्योधन, ऐसा न कहो। पांडव अपनी भूमि चाहते हैं। अपनी भूमि का मोह सभी को होता है। अन्यथा वे चाहें तो सारी वसुधा को जीतकर अपना नया साम्राज्य स्थापित कर सकते हैं। पांडवों का पराक्रम अविस्मरणीय है।

कर्ण—शत्रु की प्रशंसा सुनना भी मेरे लिए पाप है। पितामह ! जिन पांडवों का यश-गान करते आपकी जिह्वा नही थकती, उन्हें मैं अकेले ही पराजित करने का सामर्थ्य रखता हूँ। आप लोग शस्त्र त्याग दें। मैं, सूतपुत्र, घोषणा करता हूँ कि अकेले ही पांडवों का काल बन जाऊँगा।

दुर्योधन—धन्य हो बन्धु ! तुम्हारी वीर-घोषणा तुम्हारे ही योग्य है।

धृतराष्ट्र—अंगराज, तुम्हारी वीरता पर हमें पूरा विश्वास और भरोसा है। पितामह ! आचार्य ! व्यर्थ तर्क करने से क्या लाभ ? दुर्योधन मानेगा नहीं। इसलिए मतभेद त्याग कर·····

भीष्म—दुर्योधन शक्ति और सत्ता के मद में अंधा हो रहा है। वह यह भूल गया है कि यदुराज कृष्ण अर्जुन के सारथी है। यद्यपि उन्होंने अस्त्र-शस्त्र न उठाने की प्रतिज्ञा की है, किन्तु फिर भी कृष्ण, कृष्ण है।

कर्ण—वही कृष्ण न, जो जरासंध के भय से मथुरा छोड़कर द्वारका में जा बसे ?

दुर्योधन—और उसी जरासंध को हमारे बन्धु अंगराज ने मल्ल-युद्ध में पराजित कर दिया। पितामह ! आचार्य ! आप लोग व्यर्थ ही चिंतित हो रहे हैं। अस्त्र-शस्त्र उठाकर प्रलय मचा दें। पांडवों में इतना सामर्थ्य कहाँ कि आप लोगों का प्रहार झेल सकें ?

भीष्म—ठीक है, दुर्योधन ! यदि तुम्हारी यही इच्छा है कि कौरव-

वंश का नाश हो, तो यही होगा। हम युद्ध करेंगे।

दुर्योधन—ऐसे नही तात ! आपको कौरव-सेना का संचालन करना होगा। आप ही हमारे प्रधान सेनापति बनें।

आचार्य—महात्मा भीष्म ही इस पद के योग्य हैं।

भीष्म—नहीं आचार्य, मैं तो एक साधारण सैनिक की भाँति युद्ध करना चाहता हूँ। मेरे लिए कौरव और पाडव समान है। पर मैं कौरव-नरेश की प्रजा हूँ। इसलिए राज-भक्ति के कारण युद्ध करूँगा। सेनापति कोई और ही बने।

धृतराष्ट्र—तात ! आप रुष्ट हैं तभी ऐसा कह रहे हैं। बालकों की बातों का बुरा नही मानना चाहिए।

आचार्य—आप सेना के नेतृत्व का भार सँभालेंगे, तभी विजय की आशा की जा सकती है।

भीष्म—(**पल भर सोच कर**) ठीक है। मैं प्रधान सेनापति का पद स्वीकार करता हूँ परन्तु· · · ·

दुर्योधन—आदेश दें, पितामह !

भीष्म—युद्ध में अनुशासन-हीनता, उच्छृंखलता आदि मुझे असह्य है। तुम्हारा सखा वसुसेन, वाचाल, निरंकुश अनुशासन भंग करने वाला है। वह मेरे सेनापतित्व में युद्ध करे, यह मैं स्वीकार नही कर सकता।

दुर्योधन—ऐसा न कहें, अंगराज आपकी हर आज्ञा मानेंगे। अपने निर्णय पर पुनर्विचार करें, पितामह !

भीष्म—प्रतिज्ञा की भाँति भीष्म का निर्णय भी अटल है।

कर्ण—तो मेरा निश्चय भी सुन लें, पितामह ! मैं आज से ही अस्त्र-शस्त्र त्यागता हूँ। मैं नही चाहता कि गृह-कलह के कारण हमारी पराजय हो। मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि अस्त्र-शस्त्र तभी उठाऊँगा जब आप युद्ध में धराशायी हो जायेंगे।

[**कर्ण का तेज़ी से प्रस्थान। दुर्योधन भी अंगराज, अंगराज कहता हुआ चला जाता है।**]

धृतराष्ट्र—महाबली कर्ण का युद्ध विरत होना कहीं हमारे लिए···

आचार्य—आप चिन्ता न करें, महाराज ! महात्मा भीष्म का निर्णय उचित ही है। युद्ध में एक मत होना अनिवार्य है। कर्ण अवश्य बात-बात पर विरोध प्रकट करता, युद्ध-नीतियों की आलोचना करता और अकारण ही अपने मिथ्या दंभ के कारण पितामह के नेतृत्व को चुनौती देता।

विदुर—इस दृष्टि से तो कर्ण का अस्त्र-शस्त्र त्यागना हितकर ही हुआ।

धृतराष्ट्र—अब कौरव-वंश की रक्षा का भार आप लोगों पर ही है। मैं तो अस्त्र-शस्त्र उठा नहीं सकता। अंधा जो ठहरा।

भीष्म—यह तुम्हारा सौभाग्य है, धृतराष्ट्र ! आँखें होतीं तो हमारी तरह तुम्हें भी वंश विनाशक यह महाभारत देखना पड़ता। विधाता की लीला भी विचित्र है। क्षण-भंगुर राज्य के लिए भाई ही भाई का काल बन जाता है, पिता ही पुत्र का गला काटता है, पुत्र ही जनक का रक्त बहाता है। शक्ति, सत्ता, सम्पत्ति और वैभव की लिप्सा मनुष्य को पशु बना देती है। यह अभिशाप मनुष्य आदिकाल से भोग रहा है और कदाचित प्रलय तक भोगता रहेगा।

[भीष्म गंभीर मुद्रा में धीरे-धीरे बाहर जाते हैं। तभी मंच पर अँधेरा हो जाता है।]

दूसरा दृश्य

स्थान—कुरुक्षेत्र में भीष्म का युद्ध-शिविर।

समय—महाभारत के आठवें दिन की रात।

[भीष्म शिविर में टहल रहे हैं। आठ दिनों के महायुद्ध के बाद भी उनके चेहरे पर थकान और शिथिलता के चिन्ह नहीं हैं। फिर भी लगता है जैसे वे इस नर-संहार से प्रसन्न नहीं हैं।]

भीष्म—आठ दिन से कुरुक्षेत्र में विनाश का ताडव हो रहा है। यह नर-संहार, रक्त-प्रवाह किसलिये? क्या भूखंड मानव-जीवन से भी अधिक मूल्यवान् है? यदि कोटि-कोटि प्राणों की बलि देकर कौरवों ने पांडवों को पराजित करके राज्य बचा भी लिया, तो क्या होगा? मानव-रक्त से सिंचा हुआ यह राज्य-वृक्ष क्या विष-वृक्ष नहीं बन जायेगा? और यदि विजय पांडवों की हुई, तो उन्हें भी इस राज्य के लिए कितना बड़ा मूल्य चुकाना होगा? ओह...! कैसी विडम्बना है? मेरे ही प्रपौत्र आपस में कट-मर रहे हैं और मैं देखता रहता हूं! मेरे बाण मेरे ही वंश को काट रहे हैं। क्या पिता ने इसीलिए इच्छा-मृत्यु का वर दिया था कि वृद्धावस्था में यह विनाश-लीला देखनी पड़े, अधर्म-युद्ध में सम्मिलित होकर अपनी अन्तरात्मा का गला घोंटना पड़े? पर मुक्ति का कोई मार्ग भी तो नहीं है! माँ को वचन न दिया होता तो हस्तिनापुर त्याग कर वन को चला जाता या फिर धर्मात्मा पांडवों की ओर से शस्त्र उठाकर धर्म, न्याय और नीति के लिए संघर्ष करता! इस प्रकार अधर्म, अनर्थ और

अनीति का पक्षधर बनकर अन्तरात्मा के विरुद्ध तो युद्ध न करना पड़ता। मेरे इस दुःख और ग्लानि का अंत न जाने कब होगा ?

[**दुःखी मुद्रा में दुर्योधन का प्रवेश।**]

दुर्योधन—पितामह, प्रणाम स्वीकार करें !

भीष्म—आओ बैठो !

दुर्योधन—विजय का आशीष नहीं दिया ? पितामह ! क्या जय और कीर्ति का आशीष केवल पांडवों के लिए ही है ?

भीष्म—(**आसन पर बैठकर**) लगता है तुम्हारा चित्त खिन्न है।

दुर्योधन—खिन्न न हो तो क्या प्रसन्न हो ?

भीष्म—खिन्नता का कारण ?

दुर्योधन—आपकी उदासीनता।

भीष्म—क्या कहना चाहते हो ?

दुर्योधन—यही कि आप सच्चे मन से युद्ध नही कर रहे हैं ?

भीष्म—यह आरोप मिथ्या है। तुम यह भली प्रकार जानते हो कि मैंने आठ दिनों में पाँडवों के असंख्य सैनिकों का वध किया है। मेरे अग्नि-शरों ने पांडव-सेना में त्राहि-त्राहि मचा दी है।

दुर्योधन—कौरव-सेना भी तो भारी संख्या में हताहत हुई है। अर्जुन के शरों और भीम की गदा के वज्र-प्रहारों ने हमारी सेना में भी त्राहि-त्राहि मचा दी है।

भीष्म—वह तो होगा ही। मैंने तुम्हें पहले ही चेतावनी दे दी थी। पर तुम नहीं माने। अब शोक क्यों करते हो ?

दुर्योधन—शोक इसी बात का है पितामह कि अंगराज ने अस्त्र-शस्त्र त्याग दिये है। यदि वे युद्धरत होते तो पांडव-सेना का विनाश निश्चित था।

भीष्म—कर्ण से कहो युद्ध-भूमि में आये। मैं ही अस्त्र-शस्त्र त्याग दूँगा।

दुर्योधन—आप तो रुष्ट हो गये, पितामह ! मैं बहुत दुःखी हूँ। मुझ पर क्रोध नहीं, दया करें ! आपके बल पर ही हमने युद्ध छेडा है।

भीष्म—मैं अपने धर्म का पालन कर रहा हूँ।

दुर्योधन—परन्तु आधे मन से। आपके मन में अब भी पांडवों के लिए ममता है। इसीलिए आप उन्हें अपने वश में पाकर भी छोड़ देते हैं। पितामह, मुझे पूरा विश्वास था कि एक-दो दिन में ही आप पांडवों का नाश कर देंगे और विजय-श्री कौरवों को वरेगी। परन्तु आठ दिन हो गये और पांडव आज भी जीवित है। क्या यह शोक का कारण नही है? जिस पितामह के सम्मुख देव भी नहीं टिक सकते, जिसने भगवान परशुराम को भी परास्त कर दिया, वही आज पांडवों के सामने असहाय हो रहा है, उसके प्रहार मन्द हो रहे है, शरों की धार कुन्द हो रही है।

भीष्म—बस दुर्योधन, बस!

दुर्योधन—मै यह कैसे मान लूँ कि आपका पौरुष थक गया है? निश्चय ही आप पूरे मन से युद्ध-रत नही है। पांडवों के प्रति आपका मोह आपके प्रहारों का वेग मन्द कर देता है। बोलिये, मैं असत्य कह रहा हूँ?

भीष्म—तुम सत्य कह रहे हो, दुर्योधन! पांडवों के प्रति मेरे मन में ममता है, पर विश्वास करो मैं उसके कारण कभी कर्त्तव्य-विमुख नही हुआ। हाँ, यह अवश्य है कि पांडवों का युद्ध अपने अधिकार और अस्तित्व के लिए है और मै अधर्म, अनीति और अन्याय का पक्षधर हूँ, यह सोच-सोचकर ग्लानि का अनुभव करता रहता हूँ। मेरी अन्तरात्मा मुझे रह-रहकर धिक्कारती रहती है।

दुर्योधन—इससे अच्छा तो यह है कि आप मेरा वध कर दें। (**तलवार खींचकर पितामह के चरणों पर रख कर**) यह रही तलवार! मेरा शिर काट डालें। आपके हाथों मृत्यु पाना भी बड़े सौभाग्य की बात है।

भीष्म—वत्स, दुर्योधन! ऐसा कहकर मुझे और दुःखी न करो।

दुर्योधन—तो मुझे पराजय के कलंक से बचालें, पितामह! नित्य ही सूर्योदय के साथ मन में आशा अंकुरित होती है कि आज पितामह पांडवों का नाश करके कौरवों को विजय दिलायेंगे, परन्तु सूर्यास्त होने पर निराशा ही मिलती है। कौरव-शिविर में मृत्यु का सन्नाटा छा जाता है और पांडव-

शिविर हर्ष और उल्लास से भर जाता है। बोलिये, कब तक मैं यह दुसह वेदना भोगता रहूँ ? यदि अंत में पराजय ही होनी है तो कल ही हो जाये। आशा-निराशा की छलना से मैं संत्रस्त हो गया हूँ।

[दुर्योधन का कंठ अवरुद्ध हो जाता है।]

भीष्म——तुम्हारी मनोव्यथा मैं समझता हूँ, दुर्योधन ! आचार्य द्रोण, कृपाचार्य, अश्वत्थामा, मद्रराज शल्य, सिन्धुराज जयद्रथ, भूरिश्रवा——हम सब प्राण-पण से युद्ध कर रहे है। हम अपनी ओर से कुछ भी उठा नहीं रखते। फिर भी विजय-श्री हमसे दूर है। इसका कारण जानते हो ?

दुर्योधन——आप ही बतायें।

भीष्म——पाँडवों का पराक्रम और युद्ध-कौशल तथा कृष्ण की नीति !

दुर्योधन——पर कृष्ण तो शस्त्र छूते भी नही। वे अर्जुन के सारथी मात्र है।

भीष्म——उन्हें केवल सारथी न समझो, दुर्योधन ! यदुराज कृष्ण ही इस महाभारत के प्रमुख सूत्रधार है। होगा वही जो वे चाहते हैं। फिर भी हमें कर्त्तव्य तो करना ही है। जाओ, निश्चिन्त हो कर विश्राम करो. कल हमारा महासमर होगा। मै सर्वतोभद्र व्यूह की रचना करूँगा। कुरुक्षेत्र मे कल रुधिर का महासागर लहरायेगा जिसमें असंख्य मुंड तैरेंगे। कल कृष्ण को भी अपनी प्रतिज्ञा भंग करनी होगी।

दुर्योधन——अब मैं आश्वस्त हुआ, पितामह ! (**चरण छूकर**) प्रणाम तात !

भीष्म——यशस्वी भव !

[दुर्योधन का प्रस्थान। भीष्म आवेश पूर्ण मुद्रा में पुनः टहलने लगते हैं। मंच पर अंधकार छा जाता है।]

तीसरा दृश्य

स्थान—वही शिविर।

समय—दूसरे दिन की रात।

[शिविर में भीष्म, द्रोण और दुर्योधन वार्तालाप कर रहे हैं। दुर्योधन के चेहरे पर सन्तोष और हर्ष के चिन्ह हैं।]

दुर्योधन—पितामह, आज पांडवों ने आपका प्रचंड पराक्रम देखा।

द्रोण—आपके प्रहारों से हर ओर त्राहि-त्राहि मच गयी थी।

दुर्योधन—निश्चय ही आज का युद्ध महासमर था।

द्रोण—आपका रौद्र रूप देखकर शत्रु आतंकित और भीत थे।

दुर्योधन—कृष्ण को भी अपनी प्रतिज्ञा भूलकर अर्जुन की रक्षा के लिए चक्र उठाना पड़ा। धन्य हैं पितामह, आप धन्य हैं!

भीष्म—कृष्ण चक्र उठाकर मुझ पर प्रहार करने के लिए क्यों दौड़े, इसका रहस्य तुम नहीं समझोगे, दुर्योधन! पुरुषोत्तम की लीला न्यारी है। और क्या कहें?

दुर्योधन—आज पांडव-शिविर में मृत्यु का सन्नाटा है और हमारे शिविर में हर्ष और आनन्द की हिलोरें उठ रही हैं। यदि आपने इसी प्रकार शत्रु का संहार किया तो शीघ्र ही हम विजयी होंगे।

भीष्म—अच्छा अब विश्राम करो! रात अधिक हो गयी है। आचार्य, आप भी जायें! मैं कल की व्यूह-रचना के विषय में मनन करूँगा।

आचार्य—ठीक है।

दुर्योधन—प्रणाम, पितामह !

[द्रोण और दुर्योधन का प्रस्थान।]

भीष्म—(**टहलते हुये स्वगत**) दुर्योधन विजय की आशा मन में सँजोये है। वह क्या जाने कि विजय-श्री पांडवों को ही वरेगी। अनाचार, अन्याय और अनीति की नाव एक दिन डूबेगी ही। सदाचार, न्याय और सत्य का ही बोलबाला होगा। ध्वंस की नीव पर नया निर्माण होगा, नयी व्यवस्था जन्मेगी, नवीन संस्कृति का उदय होगा। यही भवितव्य है। इसे कौन टाल सकता है ?

[कृष्ण, युधिष्ठिर और अर्जुन का प्रवेश। तीनों ही निरस्त्र हैं।]

कृष्ण—पितामह ! हमने असमय आप को कष्ट दिया। क्षमा करें !

भीष्म—लज्जित न करें, मधुसूदन ! विराजें। बैठो युधिष्ठिर ! तुम भी बैठो अर्जुन !

[युधिष्ठिर और अर्जुन भीष्म के चरण छूते हैं।]

भीष्म—यशस्वी भव ! विजयी भव !!

[सब लोग बैठ जाते हैं।]

भीष्म—(**प्रशंसा भरे स्वर में**) वत्स अर्जुन, आज तुमने अद्भुत युद्ध-कौशल का परिचय दिया। मैं बहुत प्रसन्न हूँ। तुम्हारा हस्त-लाघव देख कर आँखें तृप्त हो गयीं। तुम अवश्य कुरु-वंश को गौरवान्वित करोगे।

अर्जुन—सब आपके चरणों का प्रताप है, पितामह ! कुरु-वंश के गौरव तो आप हैं। हम तो बस आपके चरण-चिन्हों पर चलने का प्रयास भर कर रहे हैं।

भीष्म—(**हँस कर**) शस्त्रों की भाँति शब्दों के प्रयोग में भी चतुर हो। क्यों न हो ? केशव के सखा जो ठहरे।

कृष्ण—आप मुझे बीच में क्यों खींच रहे हैं, पितामह ? आप दोनों ठहरे महारथी और मैं एक मात्र सारथी।

भीष्म—आज सारथ्य-धर्म का निर्वाह तो अद्भुत रीति से किया !

मित्र की रक्षा के लिए अपनी प्रतिज्ञा भूलकर रथ-चक्र उठाकर मुझ वृद्ध पर चढ़ दौड़े।

[**भीष्म हँसते हैं।**]

कृष्ण—भीष्म-प्रतिज्ञा की तुलना में कृष्ण-प्रतिज्ञा का क्या मूल्य?

भीष्म—आपकी लीला अपरम्पार है, केशव! अरे, तुम क्या मौन बैठे रहोगे, युधिष्ठिर? कुछ बोलो न! यह तो धर्म-युद्ध है। दिन में शत्रु, रात में मित्र।

[**युधिष्ठिर मौन ही रहते हैं।**]

भीष्म—क्या बात है? मुझसे रुष्ट हो? अथवा मौन-व्रत धारण किया है?

[**भीष्म फिर हँसते हैं।**]

कृष्ण—धर्मराज न तो आप से रुष्ट है और न इन्होंने मौन-व्रत ही धारण किया है।

भीष्म—फिर इस मौन का कारण?

कृष्ण—दुःख और आशंकायें।

भीष्म—कैसा दुःख? कैसी आशंकायें?

अर्जुन—पितामह! आपका पराक्रम हम पांडवों के लिए अमह्य है। आपके तीक्ष्ण शर हम झेल नहीं सकते। आज तो हम किसी प्रकार बच गये, पर कल मृत्यु निश्चित है।

भीष्म—ऐसा न कहो, वत्स!

युधिष्ठिर—इसमें असत्य क्या है, पितामह? हमारा मनोबल तो उसी दिन टूट गया था जिस दिन हमें ज्ञात हुआ कि आप और आचार्य जैसे पूज्य और गुरुजन भी हमारे विरुद्ध शस्त्र उठायेंगे।

भीष्म—वत्स युधिष्ठिर! अपने व्यंग्य-शरों से कलेजा छलनी न करो। तुम मेरी मानसिक यंत्रणा नहीं समझ सकते। जिस धर्म-संकट में पड़ कर मुझे दुर्योधन का साथ देना पड़ा है, उसका अनुमान तुम्हें नहीं है।

अर्जुन—आपकी स्थिति हम समझते हैं, पितामह!

भीष्म——यदि समझते, तो इस प्रकार उलाहना न देते। युधिष्ठिर, अर्जुन, सुनो ! केशव तो अन्तर्यामी हैं। मेरे भाव जानते होंगे। मेरा शरीर कौरवों के साथ है परन्तु मन सदा तुम्हारी ही विजय का अभिलाषी रहा है।

युधिष्ठिर——हम जानते हैं, पितामह ! महाभारत प्रारम्भ होने के पूर्व जब मैं आपके चरण छूकर युद्ध करने की आज्ञा लेने आया था तब भी आपने विजय का ही आशीष दिया था।

अर्जुन——पर आज लगता है, आपका वह आशीष मिथ्या सिद्ध होगा।

भीष्म——भीष्म का आशीष मिथ्या नहीं होगा, अर्जुन ! वह अवश्य फलेगा। निश्चिन्त होकर युद्ध करो। जनार्दन जिसके सारथी हों, उसे किस बात का भय ?

कृष्ण——आप इस अकिंचन को फिर सानने लगे, पितामह ! निरस्त्र कृष्ण और दिव्यास्त्रों से युक्त पराक्रमी पितामह में आकाश-पाताल का अन्तर है। आपके प्रहारों से आक्रांत होकर ही युधिष्ठिर और अर्जुन आपकी शरण में आये है।

युधिष्ठिर——हाँ पितामह ! हम आपके शरणागत हैं।

अर्जुन——हमें अभयदान दें !

भीष्म——वही तो कह रहा हूँ। कृष्ण जिसके सखा हों, उसे काल भी पराजित नहीं कर सकता। महाभारत का अंत तो केशव ने पहले ही नियत कर दिया है। फिर आशंका और आतंक क्यों ?

युधिष्ठिर——आप विधि का विधान भी बदलने में समर्थ हैं, पितामह ! आप जिसके प्रतिद्वन्द्वी हों, उसकी रक्षा केशव भी नहीं कर पायेंगे।

अर्जुन——यदि आप समझते हैं कि हम अधर्म-युद्ध कर रहे हैं और हमारी नीति अन्याय की है, तो आदेश दें ! हम वचन देते हैं कि इसी क्षण अस्त्र-शस्त्र त्याग कर वनवासी बन जायेंगे।

युधिष्ठिर——और यदि आपकी दृष्टि में हमारा पक्ष न्याय और धर्म का है तो हमारी सहायता करें।

कृष्ण—इन लोगों की प्रार्थना अनुचित तो नहीं है, पितामह !

भीष्म—करूँगा, अवश्य करूँगा। यह भी कैसी विचित्र विडम्बना है कि अपने आशीष के फलीभूत होने में मैं ही बाधक बन रहा हूँ। यह निश्चित है कि जब तक मेरे हाथ में अस्त्र-शस्त्र हैं, तब तक तुम्हारी विजय दुर्लभ है। मुझे इच्छा-मृत्यु का वर प्राप्त है। इसलिए तुम लोग मेरा वध भी नहीं कर सकते। मेरी मृत्यु तभी होगी जब मैं चाहूँगा। और अब वह घड़ी आ गयी है।

अर्जुन—पितामह ! आप····

भीष्म—सुनो, अर्जुन, कल मुझ पर निर्भय होकर प्रहार करना ! आज तक तुमने मेरी मान-मर्यादा की रक्षा की। मैं प्रसन्न और सन्तुष्ट हूँ। सुनो ! मैं तुम लोगों को अपने वध का उपाय बताता हूँ।

युधिष्ठिर—नहीं, पितामह ! हमें आपका जीवन लेकर विजय नहीं चाहिए।

भीष्म—और कोई मार्ग नहीं है। अब जीवन का मोह भी नहीं रहा। जो नहीं देखना चाहता था, वह भी देख लिया। जो नहीं करना चाहता था, वह भी कर चुका। अब स्वेच्छा से ही मृत्यु का वरण करूँगा। तुम लोग दुःखी न हो। सुनो, काशिराज की ज्येष्ठ कन्या अम्बा ने मेरा वध करने के लिए घोर तपस्या करके भगवान् शंकर से वरदान प्राप्त किया था। उसके बाद वह चिता में जल कर भस्म हो गयी। राजा द्रुपद का पुत्र शिखंडी पूर्व जन्म का अम्बा ही है। पहले वह शिखंडिनी नामक कन्या थी ; पुरुषत्व तो उसे बाद में एक दानव के वरदान से प्राप्त हुआ है। मेरी प्रतिज्ञा है कि स्त्री पर शस्त्र नहीं उठाऊँगा। अर्जुन, यदि शिखंडी की ओट से तुम मुझ पर प्रहार करोगे तो तुम्हारी मनोकामना पूर्ण होगी।

अर्जुन—(**दुःखी होकर**) मनोकामना ? नहीं पितामह, मेरी मनोकामना आपकी मृत्यु कदापि नहीं है।

युधिष्ठिर—यह अधर्म हमसे नहीं होगा, पितामह ! आपके पवित्र रुधिर से सना राजमुकुट लेकर हम क्या करेंगे ?

अर्जुन—हमें ऐसी विजय नहीं चाहिए।

युधिष्ठिर—ऐसी विजय से तो पराजय ही अच्छी है।

भीष्म—वत्स युधिष्ठिर और अर्जुन ! केशव के सामने मैं तुम्हें क्या उपदेश दूँ ? बस इतना कहूँगा कि जो कुछ हो रहा है, या कल होगा, वह विधाता की इच्छा के अनुसार ही है। हम तुम तो बस निमित्त मात्र हैं। कर्त्ता तो कोई और ही है। जाओ, और मन से व्यर्थ की शंकायें और सन्देहों को निकाल कर अपना कर्म करो।

अर्जुन—किन्तु पितामह· · ·

कृष्ण—पितामह का कथन सत्य है, पार्थ ! न तुम पितामह को मारोगे और न पितामह मरेंगे। मरने और मारने वाला तो कोई और ही है। चलो। पितामह को विश्राम करने दो !

[युधिष्ठिर और अर्जुन भीष्म के चरण छूते हैं। भीष्म भावाकुल होकर उन्हें हृदय से लगाते हैं। कृष्ण के साथ अर्जुन और युधिष्ठिर का प्रस्थान। भीष्म के मुख पर सन्तोष और आनन्द की अनोखी आभा झिलमिलाने लगती है। धीरे-धीरे मंच का प्रकाश बुझ जाता है।]

चौथा दृश्य

स्थान––कुरुक्षेत्र का एक भाग।

समय––रात्रि।

[भीष्म शर-शैय्या पर पड़े हैं। उनके निकट ही कृष्ण, अर्जुन, युधिष्ठिर, द्रोण और दुर्योधन खड़े हैं। सभी के चेहरों पर गहरे शोक की छाया है।]

अर्जुन––(**रुद्ध कंठ से**) पितामह ! मैं महान् पातकी हूँ। मैंने शिखंडी की ओट से आप पर प्रहार किये। आत्म-ग्लानि की भयंकर ज्वाला से मेरा रोम-रोम जल रहा है।

भीष्म––वत्स अर्जुन ! शोक और दुःख न करो ! ग्लानि को मन से निकाल दो। जीवन और मृत्यु तो हरि के हाथ है।

युधिष्ठिर––जिन पितामह की छत्र-छाया में हम फले-फूले, उन्ही को आज·····

दुर्योधन––यह मगरमच्छी आँसू न बहाओ। धर्मराज होकर भी महा अधर्म किया ! पितामह को छल से मारा और अब शोक मनाते हो। तुम्हें तो प्रसन्न होना चाहिए कि पितामह धराशायी हुये। जाओ, अपने शिविर में जाकर हर्ष मनाओ। जाओ।

[कृष्ण, युधिष्ठिर और अर्जुन का प्रस्थान।]

भीष्म—दुर्योधन ! क्रोध न करो ! पांडव निर्दोष हैं। वत्स, अब भी आँखें खोलो ! युद्ध की विभीषिका अपनी आँखों से देखो। मेरे पतन से ही शिक्षा लो। समाप्त कर दो इस विनाशकारी युद्ध को। पांडवों को आधा राज्य देकर शान्ति की स्थापना करो।

दुर्योधन—नही पितामह ! अब यह युद्ध समाप्त नही होगा। आप इसी शर-शैय्या पर विश्राम करें और महाभारत का भीषण नर-संहार देखें। हम आपके साथ किये गये छल का प्रतिशोध लेंगे।

भीष्म—(**हँस कर**) प्रतिशोध ! किसका ? किससे ?

दुर्योधन—हमें आदेश दें कि हम आचार्य को प्रधान सेनापति बनायें।

द्रोण—वीर-शिरोमणि, हमें आशीष दें कि हम कौरव-सेना का संचालन सफलतापूर्वक कर सकें।

भीष्म—आप भी अपना धर्म पूरा करके उऋण हो जायें, आचार्य ! मैंने तो अपना ऋण चुका दिया।

[**भीष्म आँखें बन्द कर लेते हैं।**]

दुर्योधन—अब आज्ञा दें, पितामह ! यदि कोई कष्ट हो तो कहें। हम उचित व्यवस्था कर देंगे।

भीष्म—कष्ट कैसा ? किस बात का ?

दुर्योधन—मेरा आशय है, आपने वैद्यराज से व्रणों का उपचार भी नहीं कराया और····

भीष्म—(**बीच में ही**) वैद्यराज मेरे व्रणों का उपचार नहीं कर सकते थे। इसीलिए लौटा दिया। वत्स दुर्योधन ! तुम केवल मेरे शरीर के व्रण देख सकते हो। मेरे मन पर जो असंख्य व्रण हैं उनकी पीड़ा का अनुमान तुम्हें नहीं है। अपने ही वंशजों को पशुओं की भाँति संघर्ष-रत देख कर किसका कलेजा छलनी नहीं हो जायेगा ? किन्तु जाने दो। तुमने मेरी बात न कभी सुनी है और न आज सुन रहे हो।

दुर्योधन—(**हतप्रभ होकर**) ऐसा न कहें, पितामह ! पांडवों को आधा राज्य देने की बात छोड़कर आप जो कहें, मैं मानने को प्रस्तुत हूँ।

यदि आप आदेश दें तो अभी अपना शीस काटकर आपके श्री चरणों में रख दूँ।

भीष्म—(**मंद हँसी के साथ**) नही, तुझे आत्म-घात करने का आदेश क्यों दूँगा ? मेरी तो कामना है कि तुम वीर योद्धा की भाँति सम्मुख रण में मृत्यु का वरण करो। अच्छा अब जाओ !

दुर्योधन—जाता हूँ, पितामह ! पर आप इस शर-शैय्या पर कष्ट पायें और हम·····

भीष्म—(**बीच में ही**) शर-शैय्या पर मुझे कोई कष्ट नहीं है, वत्स ! मेरा तो सम्पूर्ण जीवन ही शर-शैय्या पर बीता है। क्या तुम समझते हो कि मैं अभी तक सुमन-सेज पर विश्राम कर रहा था ? नहीं दुर्योधन, मेरे लिए तो हस्तिनापुर के राज-प्रासाद में भी शूलों की ही सेज थी। जाओ, मेरी चिन्ता न करो। भीष्म शरशायी ही है।

[दुर्योधन चरण छूकर जाता है। द्रोण का भी प्रस्थान। भीष्म आँखें बन्द कर लेते हैं। दूसरी ओर से कर्ण का प्रवेश। कर्ण धीरे-धीरे पितामह की ओर बढ़ता है और चरण छूकर लौटना चाहता है।]

भीष्म—(**आँखें खोल कर**) कौन ?

कर्ण—(**निकट आकर**) मैं हूँ, पितामह ! सूत-पुत्र।

भीष्म—सूत-पुत्र ? (**हँस कर**) नहीं कर्ण, मैं जानता हूँ तुम सूर्य पुत्र हो।

कर्ण—पितामह···आप !

भीष्म—चौंक गये ? वत्स, मुझे तुम्हारे जन्म की कथा विदित है। मैं जानता हूँ कि तुम राधेय नहीं, कौन्तेय हो। कुन्ती-सुत कर्ण, मैं तुम्हें सदा प्रताड़ित और अपमानित करता रहा, जिससे तुम्हारा क्षात्र-तेज जाग्रत हो। मैं जानता हूँ, तुम परम वीर हो। तुम्हारा बल-विक्रम मुझ से छिपा नहीं है। फिर भी मैं तुम्हें निरंतर हतोत्साहित ही करता रहा। जानते हो क्यों ?

कर्ण—बतायें, तात !

भीष्म—मैं नहीं चाहता था कि महाभारत हो और भाई ही भाई के रक्त का प्यासा बने। दुर्योधन तुम्हारे ही बल पर फूलता था। यदि तुम उसका साथ न देते तो वह युद्ध न करता और न यह महानाश ही होता ! इस प्रकार इस भीषण नर-संहार के दोषी तुम्ही हो कर्ण !

कर्ण—पितामह, आप जानते हैं कि पांडवों ने सदा मेरा तिरस्कार किया। सूत पुत्र, सूत-पुत्र कहकर अपमानित किया। सुयोधन ने मुझे सखा बनाकर अंग देश का राज्य दिया और मेरे साथ समानता का व्यवहार किया। फिर भला मैं उसका साथ क्यों न देता ? मित्रघात मुझसे नहीं हो सकता।

भीष्म—पाँडवों को भी क्या ज्ञान था कि तुम उनके अग्रज हो, सहोदर हो ! वत्स, अब भी कुछ नहीं बिगड़ा है। कौरवों का पक्ष छोड़कर पांडव-शिविर में जाओ। दुर्योधन हताश होकर युद्ध बन्द कर देगा।

कर्ण—यह असम्भव है, पितामह ! यदुराज ने भी मुझसे यही अनुरोध किया था, माँ कुन्ती भी मेरे पास आयी थी। पर मैं अपने निश्चय पर अटल रहा। मित्र दुर्योधन मेरे लिए सहोदर पांडवों से भी अधिक है। मेरे लिए धुरीहीन बनकर पक्ष बदलना असम्भव है।

भीष्म—वत्स, तुम्हारी दृढ़ता देखकर मैं प्रसन्न हुआ। फिर भी यदि तुम चाहो तो रक्त-पात रुक सकता है, नर-संहार बन्द हो सकता है, हिंसा-घृणा और द्वेष के नाटक पर यवनिका गिर सकती है तथा शान्ति की स्थापना हो सकती है।

कर्ण—आदेश दें ! मैं क्या करूँ ?

भीष्म—दुर्योधन को समझाओ।

कर्ण—वह नहीं मानेगा। और फिर यह युद्ध कौरवों-पांडवों के मध्य नहीं, अर्जुन और कर्ण के मध्य है। इसका अंत तभी होगा जब किसी एक को वीरगति प्राप्त हो जायेगी। पितामह, आप तो सब जानते हैं, सब समझते हैं। कभी-कभी युद्ध भी अनिवार्य हो जाते हैं। संहार में भी सृजन का बीज छिपा रहता है।

भीष्म—तुम ठीक कह रहे हो। लगता है महानाश अब निकट ही है। खोखले मूल्य और झूठे मान-दंड नष्ट हो जायेंगे। नये मूल्य और नये प्रतिमान स्थापित होंगे। वत्स, मेरी आँखों के सामने भविष्य नाच रहा है। अन्धे युग की समाप्ति शीघ्र ही होगी और एक नया युग-सूर्य उदित होगा।

कर्ण—पितामह, मैंने प्रतिज्ञा की थी कि जब आप युद्ध मे धराशायी हो जायेंगे तभी मैं अस्त्र-शस्त्र धारण करूँगा।

भीष्म—(**मुस्करा कर**) धराशायी नही, शरशायी हुआ हूँ। किन्तु फिर भी अब तुम स्वतंत्र हो। अस्त्र-शस्त्र उठाओ और निर्भय होकर युद्ध करो।

कर्ण—तात ! आशीष नही देंगे ?

भीष्म—यशस्वी भव ! वत्स, विजय का आशीष तो नही दे सकता, पर इतना कहता हूँ कि तेरी पराजय भी विजय से अधिक गौरवपूर्ण होगी। धर्म पर अडिग रहकर युद्ध कर ! मैं इसी शर-शैय्या से तेरा पराक्रम देखूँगा। मुझे इच्छा-मृत्यु का वर प्राप्त है। जिन आँखों से महाभारत का समारम्भ देखा है, उनसे उसका अंत भी देखना चाहता हूँ। जब तक सूर्य देव उत्तरायण नही होंगे, तब तक मै जीवित रहूँगा।

कर्ण—(**रुद्ध कंठ से**) तात ! मैंने सदा आपका अनादर ही किया है, आपकी छाती मे व्यंग्य-बाण ही मारे है। इस अधम का अपराध क्षमा करें ! अपने दर्प मे चूर और शक्ति के मद मे अन्धा होकर मैंने आपकी महानता को नही स्वीकारा था। मुझे क्षमा करें, तात, मुझे क्षमा करे !

भीष्म—नही, वत्स नही ! आँसू पोंछ डालो। चित्त को सुस्थिर करो। जाओ ! आधी रात हो गयी है। जाकर विश्राम करो ! कल से तुम्हें अपना युद्ध-कौशल दिखाना है।

कर्ण—जो आज्ञा, पितामह !

[कर्ण पितामह के चरण छूता है और धीरे-धीरे प्रस्थान करता है। मंच का प्रकाश बुझ जाता है।]

पाँचवाँ दृश्य

स्थान––वही।

समय––कई दिन बाद !

[महाभारत का युद्ध समाप्त हो चुका है। कौरवों और पाँडवों की सेनायें समूल नष्ट हो चुकी हैं। पांडव-पक्ष के पाँच भाई, कृष्ण और सात्यकि बचे हैं तथा कौरव-पक्ष के अश्वत्थामा, कृपाचार्य और कृतवर्मा। युधिष्ठिर हस्तिनापुर के सिंहासन पर विराज चुके हैं।

कुरुक्षेत्र के मैदान में भीष्म अपनी शर-शैय्या पर पड़े हैं।]

भीष्म––(**धीमे स्वर में स्वगत**) महाभारत के विनाशकारी युद्ध का अंत भी इन बूढ़ी आँखों ने देख लिया। दोनों पक्षों की सेनायें समूल नष्ट होगयीं। बड़े-बड़े महारथी काल-कवलित हुये। पराजित कौरवों का तो नाश हुआ ही, विजयी पांडवों को भी कितना मूल्य चुकाना पड़ा है? कोटि-कोटि प्राणों का होम···! ओह···युद्ध की ज्वाला किसी को नहीं छोड़ती ! उसकी विकराल लपटों में दोनों पक्ष भस्म होते हैं ! विश्व से युद्ध की विभीषिका का अंत कभी होगा भी या नहीं? क्या मनुष्य सदैव इसी प्रकार रक्त-पिपासु बना रहेगा? कभी भी शान्ति और सद्-भावना का महत्व वह नहीं समझेगा? क्या सहअस्तित्व की भावना का कभी विकास नहीं होगा? हे प्रभु ! मानव की भावी पीढ़ी यदि महाभारत से शिक्षा ग्रहण करे तो मानवता का कितना कल्याण हो !

कृष्ण—योगीश्वर, अभिवादन स्वीकार करें !

भीष्म—केशव, अंत समय में दर्शन देने आ ही गये ! (**मंद मुस्कान के साथ**) जानता था अवश्य आयेंगे।

[धृतराष्ट्र, विदुर और युधिष्ठिर भीष्म के चरण-स्पर्श करते हैं।]

भीष्म—यशस्वी हो ! कहो विदुर, हस्तिनापुर की व्यवस्था ठीक हो गयी ?

विदुर—हो ही गयी है, तात ! परन्तु·····

भीष्म—परन्तु क्या ?

विदुर—विचित्र स्थिति है। विजित और विजेता, दोनों ही आत्म-ग्लानि के अनल में दह रहे हैं।

भीष्म—स्वजनों के विग्रह में ऐसा ही होता है ! धृतराष्ट्र····! अब दुःखी होने से क्या लाभ ? और फिर तुम्हारा दोष भी क्या है ?

धृतराष्ट्र—नहीं तात ! इस महा विनाश का वास्तविक दोषी तो मैं ही हूँ। यदि विदुर की बात मानकर मैंने दुर्योधन का परित्याग कर दिया होता तो आज यह दिन न देखना पड़ता ! देवी गांधारी की बात भी मैंने नहीं मानी। दुर्योधन को परोक्ष रूप से प्रोत्साहन देकर मैंने ही नाश का बीज बोया था। मेरे ही कारण पांडवों को अनेक कष्ट उठाने पड़े, राज-प्रासाद छोड़ कर वन-वन भटकना पड़ा और अंत में महाभारत की संहार-लीला हुई। तात ! मैं अन्धा हूँ, पर संजय की आँखों से मैंने सब कुछ देखा है। कोटि-कोटि मानवों का हत्यारा मैं हूँ···हाँ···मैं ! मेरे कानों में विधवाओं का क्रन्दन और माताओं का चीत्कार गूँज रहा है। मेरे पातक मेरे वक्षस को शूल की तरह वेध रहे हैं। मुझे पल भर भी शान्ति नहीं मिलती तात, पल भर भी शान्ति नहीं मिलती !

भीष्म—शान्त हो, वत्स, शान्त हो ! जो हुआ, वही होना था ! हम तुम तो निमित्त मात्र थे।

धृतराष्ट्र—मैं तो अन्धा था ही, मेरे पुत्र भी अन्धे बन गये ! हा...! द्रौपदी ने ठीक ही कहा था ! अन्धे पिता के पुत्र भी अन्धे ही होते हैं।

कृष्ण—महाराज, व्यर्थ शोक न करें ! महाभारत का सम्पूर्ण युग ही अन्धा था। इस अन्ध युग में बस एक ज्योति-पुरुष हैं—महात्मा भीष्म।

भीष्म—केशव, नारायण होकर एक साधारण नर को इतना महत्त्व न दें कि वह·····

कृष्ण—(**बीच में ही**) साधारण नर ही अपने अनासक्त कर्मों से नारायण बन जाता है। आपका चरित्र निश्चय ही अन्धकार में भटकती हुई मानवता के लिए प्रकाश-स्तम्भ है। योगिराज, अब तनिक युधिष्ठिर को भी उपदेश दें !

भीष्म—आपके रहते मैं क्या उपदेश दूँ, जनार्दन ?

युधिष्ठिर—(**व्यथित स्वर में**) कोई उपदेश मेरा परिताप दूर नहीं कर सकेगा। पितामह ! वन्दनीयों के आदेश से मैं हस्तिनापुर के सिंहासन पर बैठ तो गया हूँ, पर···पर मुझे राज्य-भोग की कोई इच्छा नहीं रही है।

भीष्म—इस अनिच्छा का कारण ?

विदुर—तात ! युधिष्ठिर का कहना है कि स्वजनों का नाश करके राज्य ग्रहण करना कष्टकारक है।

युधिष्ठिर—हाँ, पितामह ! हस्तिनापुर का सिंहासन रक्त से सना है ! ओह····! यदि हमें ज्ञात होता कि महाभारत का परिणाम इतना भयंकर होगा, तो हम कभी भी युद्ध न छेड़ते ! वन में रहकर सुखपूर्वक जीवन बिताते। व्यर्थ ही हमने रण-घोष किया। हा ! इस युद्ध मे क्या-क्या अधर्म नहीं हुआ ? पितामह, धर्म, न्याय, और नीति का दंभ भरने वाले हम पांडवों को भी छल का आश्रय लेना पड़ा। हमारी आत्मा हमें धिक्कार रही है। क्षणिक राज-सुख-भोग के लिए इतना घोर पतन ! अपनी मनोव्यथा कृष्ण से कहते हैं, तो यह सुनकर बस मुस्करा देते हैं। आत्म-शान्ति का कोई उपाय नहीं बताते।

भीष्म—कृष्ण तो हम मानवों की मूढ़ता पर हँसते हैं। अरे पागल,

किसने मारा ? कौन मरा ? यह तू क्या समझे ? कृष्ण का विराट् रूप भूल गया ? इन्हीं की तो सब लीला है।

विदुर—तात ! आप ही धर्मराज को समझा सकते हैं ! कहते हैं, राज-पाट छोड़ कर संन्यास ले लेंगे।

युधिष्ठिर—मेरा मन अशान्त है, पितामह ! आत्म-ग्लानि के कारण हृदय जला जा रहा है। ओह....! गुरु से कपट किया, आप पर प्रहार किया, सहोदर कर्ण का वध हुआ, अपने ही भाइयों की हत्या की। क्यों ? इस क्षुद्र सम्पदा के लिए ? कितना मूढ़ था मैं ? कितना पापी हूँ मैं ? अपने पापों का प्रायश्चित्त करने के लिए वन में जाकर तपस्या करूँगा।

कृष्ण—तपस्या से शान्ति नहीं मिलेगी, धर्मराज !

विदुर—वत्स, यदि तुम संन्यास ले लोगे, तो कुरु-वंश का क्या होगा ? हमारी आशायें तो तुम्हीं पर केन्द्रित हैं।

धृतराष्ट्र—वत्स युधिष्ठिर ! तुम सुखपूर्वक राज्य करो। इसी में हम सबका कल्याण है। संन्यास और वैराग्य की बात मन से निकाल दो।

युधिष्ठिर—कैसे निकाल दूँ तात ?

भीष्म—वत्स, स्थिर चित्त होकर मेरी बात सुनो ! महाभारत में सभी वीरों ने क्षात्र-धर्म का निर्वाह करते हुए प्राण त्यागे हैं। इसलिए जो मृत हो चुके है उनके लिए शोक करना व्यर्थ हैं। जो जीवित हैं, उनके प्रति अपने कर्त्तव्य का पालन करो।

धृतराष्ट्र—यही मै भी कहता हूँ, तात ! दुर्योधन का शासन तो अधर्म का था। उसका अंत हो गया। अब युधिष्ठिर ही धर्म-राज्य की स्थापना कर सकता है। संन्यास तो हमें लेना है

भीष्म—नहीं, धृतराष्ट्र ! तुम्हारे सामने भी महान् दायित्व है। पांडव तुम्हारे लिए पुत्र-तुल्य है। उनका मान दर्शन करो। अपनी आयु के अनुभव का लाभ इन बच्चों को दो। (**युधिष्ठिर से**) वत्स, धृतराष्ट्र के आदेशानुसार राज्य का कार्य करो।

युधिष्ठिर—किस पर राज्य करूँ ? ध्वस्त खँडहरों पर ? सुनसान नगरों पर ? उजड़े ग्रामों पर ? हर ओर प्रलय जैसा दृश्य है। विधवाओं का रुदन और माताओं का क्रन्दन है।

भीष्म—हर युद्ध के पश्चात् ऐसा ही होता है। सुनो वत्स, कर्ण ने सत्य ही कहा था। नाश में निर्माण का, संहार में सृजन का बीज निहित रहता है। जो नाश होना था वह हो चुका। अब तुम्हीं को नया निर्माण करना है। रुदन और क्रन्दन को हर्षोल्लास के गान में बदलना है, ध्वस्त खँडहरों की नींव पर नये भवन बनाने हैं, उजड़े हुए नगरों और ग्रामों को नया जीवन देना है। इस समय यही तुम्हारा सबसे बड़ा धर्म है। तुम्हें जीवन से पलायन नहीं, संघर्ष करना है; जूझना है। धर्म-वीर तो हो ही। अब कर्म-वीर भी बनो। कर्म-योग से बढ़कर और कोई योग नहीं। जनार्दन मेरे मत का प्रतिपादन करेंगे।

कृष्ण—यह आपका मत ही नहीं है, पितामह ! आपने अपने जीवन में इसे कार्यान्वित भी किया है।

युधिष्ठिर—तो · · तो राज्य-सिंहासन से मुक्ति का कोई मार्ग नहीं ?

भीष्म—राज्य-सिंहासन को भोग का माध्यम नहीं, सेवा का साधन बनाओ, वत्स ! युद्ध-काल का उन्माद अब समाप्त होगया है। तुम्हारी भाँति प्रजा भी किंकर्तव्यविमूढ है। युद्ध का प्रभाव विरोधी पक्षों पर ही नहीं, समूची प्रजा और सम्पूर्ण समाज पर पड़ता है। युद्ध के बाद अनेक समस्यायें उत्पन्न हो जाती हैं। दीनता, दरिद्रता, महँगाई, बेकारी और भ्रष्टाचार दूर करो। प्रजा राजा की सन्तान है। राजा का यह प्रमुख धर्म है कि वह प्रजा का दुःख दूर करे। यही सच्चा राज-धर्म है।

युधिष्ठिर—पितामह, आपके अमृत-उपदेश से मुझे नयी दृष्टि मिल रही है।

धृतराष्ट्र—यदि मूढ़ दुर्योधन ने तात का उपदेश पहले ही मान लिया होता, तो यह वंश-विनाशक संग्राम क्यों होता ?

भीष्म—काल की गति अबाध है, धृतराष्ट्र ! भूत, वर्तमान और

भविष्य को हम खंडित करके नहीं देख सकते। महाभारत अनिवार्य था। वर्तमान की मूढ़ता भी स्वाभाविक है। परन्तु वर्तमान की नींव पर उज्ज्वल भविष्य के निर्माण की चेष्टा युधिष्ठिर को करनी है।

युधिष्ठिर—पितामह, इतना पहान् दायित्व मैं अकेले· · ·

भीष्म—(**बीच में ही**) अर्जुन और भीम का बाहुबल तुम्हारे साथ है केशव तुम्हारे पथ-प्रदर्शक हैं। यह सत्य है कि ध्वँस करना सरल है, और सृजन करना दुष्कर। किन्तु पुरुषार्थ के आगे पर्वत भी झुक जाता है।

विदुर—जहाँ पुरुषोत्तम हैं, वहाँ क्या बाधा है? वत्स युधिष्ठिर, मन से हर प्रकार का संशय निकाल दो।

युधिष्ठिर—पितामह, कुछ और उपदेश दें!

भीष्म—नये युग की बागडोर सँभालो। नाश और सृष्टि का चक्र चलता ही रहता है। हमारा युग समाप्त हुआ। उससे शिक्षा लो। सोचो, क्या महाभारत का यह भीषण संहार, शान्ति और प्रेम की महत्ता नहीं बताता! वत्स, महाभारत की हिंसा में भी अहिंसा का मर्म निहित है। इस मर्म को समझो और आर्यावर्त्त में शान्ति, प्रेम, और सहअस्तित्व का प्रचार करो। सदा स्मरण रक्खो कि सर्वोपरि है मानव-धर्म! उसे भुलाकर तुम किसी भी धर्म का पालन नहीं कर सकते। माँ गंगा ने मुझे यही उपदेश दिया था। वही मैं तुम्हें दे रहा हूँ। इस सन्देश को जन-मानस तक पहुँचा कर ही तुम मेरा सच्चा तर्पण कर सकोगे, (**कृष्ण से**) केशव, ऐसी कृपा करो कि वसुधा भर के प्राणी कुटुम्ब की भाँति रह सकें। अच्छा, मुझे अनुमति दें। सूर्य भगवान् उत्तरायण हो गये हैं। अब मैं इस नश्वर शरीर को त्यागना चाहता हूँ।

कृष्ण—योगीश्वर! सूर्यमंडल वेधकर देवलोक जायें। वहाँ देव-गण आपकी प्रतीक्षा कर रहे हैं।

[भीष्म समाधि-मग्न होकर प्राण त्यागते हैं। सब लोग आदर-पूर्वक सिर झुकाते हैं। धीरे-धीरे मंच का प्रकाश बुझने लगता है।]

यवनिका